प्रसार दूत

कृषि विज्ञान की अग्रणी पत्रिका

जून, 2017

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानान्तरण केन्द्र

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान

नई दिल्ली–110 012

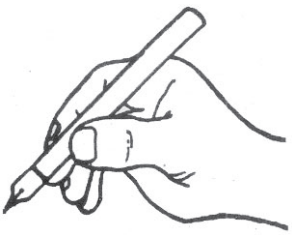

सम्पादकीय

किसान भाइयो, नमस्कार। जब यह अंक आपको मिलेगा, तब संभवत: आप काफी व्यस्त होंगे। यह मौसम खरीफ फसलों की बुआई का चल रहा है। धान की रोपाई भी चल रही होगी, जो अत्यंत श्रमसाध्य कार्य होता है। हालांकि इन दिनों रोपाई वाली मशीनें भी आ रही हैं, लेकिन ज्यादातर क्षेत्रों में यह काम श्रमिकों द्वारा हाथों से ही किया जाता है। विश्वास है कि इस खरीफ में फसल अच्छी होगी क्योंकि मौसमविज्ञानी कहते हैं कि बारिश इस वर्ष कृषि के लिए अनुकूल रहेगी।

पिछले पांच-छह माह किसानी के लिहाज से अत्यंत महत्वपूर्ण रहे। दक्षिण भारत के कुछ किसानों ने जंतर-मंतर में विरोध प्रदर्शन किया। महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में भी अलग-अलग स्थानों पर किसानों ने आंदोलन किए। परिणामस्वरूप पहले लगा कि मुख्यधारा की मीडिया में कृषि और किसानों को जगह मिली है। समाचार चैनलों में प्राइम टाइम में हफ्तों तक कृषि संबंधी बहसें चलीं। यह दुर्भाग्य ही है कि जिस देश में सत्तर प्रतिशत आबादी कृषि पर निर्भर है, वहीं यह मुद्दा हमारी प्राथमिकता सूची में पिछड़ जाता है। कुछ ही दिनों के लिए सही, कृषि एक बार राष्ट्रीय मुद्दा बन गया। लेकिन इसके लिए बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है। कई जगह किसानों ने अपनी खून पसीने की कमाई, सब्जियों और दूध नष्ट कर दिया, वहीं कई जगह हिंसक प्रदर्शनों में सार्वजनिक धन-संपत्ति की हानि भी हुई। कई जानें भी गईं। नुकसान चाहे किसान का हो या सरकार का, खामियाजा अंतत: देश और जनता को ही उठाना पड़ता है। बिना सक्षम नेतृत्व के कोई भी आंदोलन अपना उद्देश्य खो सकता है। उम्मीद है कि जल्दी ही इन्हीं आंदोलनों की पृष्ठभूमि में एक अच्छा किसान नेतृत्व निकलकर आएगा, जिसकी आवश्यकता दशकों से महसूस की जा रही है, और जो आने वाले समय में देश की दिशा तय करेगा।

इधर सरकार भी मंथन कर रही है कि ऐसा कौन सा तरीका है, जिससे आगामी पांच वर्षों में किसानों की आय दुगुनी हो जाएगी। सारा सरकारी अमला, देशभर के कृषि बुद्धिजीवी और वैज्ञानिक इस समस्या पर माथा-पच्ची कर रहे हैं। ऐसी गंभीर बहसें देशव्यापी पैमाने पर पहली बार देखने को मिल रही हैं। कृषि के मामले में अन्य निर्माण उद्योगों के सूत्र लागू नहीं होते, क्योंकि इसमें उत्पादन सीमित होता है और उत्पाद भी तुरंत खराब होते हैं। इसलिए मौजूदा औद्योगिक ढांचा कृषि को लाभकारी बनाने के लिए पर्याप्त नहीं है। बहरहाल, इतना प्रयास हो रहा है, तो उम्मीद रखनी चाहिए कि कोई न कोई समाधान जरूर आएगा। यह तो तय है कि जुबानी जमाखर्च से काम नहीं चलने वाला। विपणन और प्रसंस्करण के स्तर पर भारी ढांचागत सुविधाओं को विकसित करने के लिए पहल करनी पड़ेगी। इसके लिए बड़ी राजनैतिक इच्छाशक्ति और पूंजी का निवेश भी करना पड़ेगा। जाहिर है, यह काम आसान नहीं है।

सरकारी योजनाएँ और उनका कार्यान्वयन अभी भी छोटे और सीमांत किसानों के लिए कठिन है। समय के साथ-साथ परिस्थितियाँ विकट होती जा रही हैं, और यहाँ तक कि उनके अस्तित्व के लिए ही संकट खड़ा हो गया है। अब समय आ गया है कि छोटे किसानों को लाभदायक खेती के साथ-साथ जीवन-बचाओ वाली कृषि प्रणाली अपनाने की सलाह दी जाए। ऐसी कृषि प्रणाली जो केवल फसलों पर आधारित न हो, जिसके साथ पशुपालन,

मुर्गीपालन, सब्जी, चारा जैसे अन्य कार्य भी शामिल किए जाएँ। इससे न केवल अनिश्चितता घटती है, बल्कि कृषि लागत में भी कमी आती है। खेती और पशुपालन दोनों एक दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। पशुओं के मूत्र-गोबर से फसलों और चारे व फसल अवशेषों से पशुओं को पोषण मिलता है।

इस वर्ष सरकार की एक और बड़ी योजना जी.एस.टी. यानी माल और सेवा कर भी लागू हो जाएगी। हालांकि इसका प्राथमिक लक्ष्य कराधान प्रणाली में सुधार करना है, लेकिन उम्मीद है कि इससे व्यापार में पारदर्शिता भी बढ़ेगी। चूँकि यह एक नई व्यवस्था है, और हमारा देश बहुत बड़ा और विविधतापूर्ण है, अतः इसके परिणामों के बारे में निश्चित रूप कहना जल्दबाजी होगी। इसके दूरगामी नतीजे क्या होते हैं, व्यापार और मंहगाई पर क्या असर पड़ता है, यह वक्त के साथ-साथ स्पष्ट होता जाएगा। फिलहाल 20 लाख रूपए से कम व्यापार वालों को चिंता करने की आवश्यकता नहीं है।

पारदर्शिता और जवाबदेही, ये दो ऐसे मूल्य हैं, जो अच्छे कारोबार के लिए जरूरी है। कारोबार ही नहीं, बल्कि ये मूल्य समाज के समस्त कार्य-व्यापार के लिए आवश्यक हैं, लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए अनिवार्य हैं। उम्मीद है जी.एस.टी. से इन मूल्यों को स्थापित करने में मदद मिलेगी। आपको मालूम होगा कि सरकारी तंत्र के लिए ऐसा ही उपकरण जनता के हाथ में आया था, उसका नाम आर.टी.आई. या सूचना का अधिकार है। यह बहुत प्रभावशाली उपकरण साबित हुआ है, हालांकि इसका दायरा और प्रभावशीलता बढ़ाने की जरूरत है। अपेक्षा है कि जी.एस.टी. भी अपने क्षेत्र में इसी प्रकार से एक कारगर उपकरण साबित होगा।

जैसा कि हमारा अंक समसामयिक कृषि प्रथाओं पर केंद्रित होता है, इस अंक में भी हमने खरीफ मौसम की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए खरीफ की दलहनी फसल - अरहर की वैज्ञानिक खेती, ऊसर भूमि सुधार कृषि उत्पादन बढ़ोत्तरी में आवश्यक, वेक्टर-वायरस प्रबंधन में पलवार की भूमिका, किसानों की आय दोगुनी करना: एक महत्वपूर्ण कदम, जैविक खेती : महत्व और सुझाव, वर्मीकम्पोस्ट - किसानो की समृद्धि का आधार, छायादार नेट हाउस द्वारा बीज रहित खीरे का उत्पादन, टमाटर की वैज्ञानिक खेती, कम खर्च मे अधिक लाभ के लिये सोयाबीन का जैविक बीज उत्पादन, धान-गेहूं फसल प्रणाली में संरक्षण खेती अपनाकर करें फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन, मूँगफली की अधिक पैदावार के लिए उन्नत प्रौद्योगिकियाँ, आण्विक प्रजनन एवं बागवानी फसल सुधार हेतू जैव प्रौद्योगिकी, बेबीकार्न मक्का की उन्नत खेती एवं किन्नू की खेती का आर्थिक आकलन, आलेख शामिल किए हैं, जो आशा है कि आपको पसंद आएंगे।

संपादक

जून 2017

प्रसार दूत

वर्ष 22 | 2017 | अंक-2

संरक्षक
डॉ. जीत सिंह सन्धू
कार्यवाहक निदेशक

डॉ. जे.पी. शर्मा
संयुक्त निदेशक (प्रसार)

प्रधान सम्पादक
डॉ. बी.के. सिंह

संपादक मंडल
डॉ. एन.वी. कुंभारे
डॉ. कन्हैया सिंह
डॉ. आर.एस. बाना
डॉ. नफीस अहमद
डॉ. हरीश कुमार
श्री के.एस. यादव

तकनीकी सहयोग
श्रीमती करूणा दिक्षित
डॉ. वी.एस. सोलंकी
श्री आनन्द विजय दुबे
श्री सुरेन्द्र पाल
श्री राजेश कुमार

शुल्क और लेख भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता

प्रभारी अधिकारी
कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली - 110012
फोन: 011-25841670
एग्रीकॉम: 1800118989 (टोल फ्री)
ई-मेल: incharge_atic@iari.res.in

विषय सूची | पृष्ठ संख्या

सम्पादकीय

1. खरीफ की दलहनी फसल - अरहर की वैज्ञानिक खेती 1
2. ऊसर भूमि सुधार कृषि उत्पादन बढ़ोत्तरी में आवश्यक 5
3. वेक्टर-वायरस प्रबंधन में पलवार की भूमिका 7
4. किसानों की आय दोगुनी करना: एक महत्वपूर्ण कदम 10
5. जैविक खेती : महत्व और सुझाव 14
6. वर्मीकम्पोस्ट - किसानो की समृद्धि का आधार 17
7. छायादार नेट हाउस द्वारा बीज रहित खीरे का उत्पादन 20
8. टमाटर की वैज्ञानिक खेती 25
9. कम खर्च मे अधिक लाभ के लिये सोयाबीन का जैविक बीज उत्पादन 28
10. धान-गेहूं फसल प्रणाली में संरक्षण खेती अपनाकर करें फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन 32
11. मूँगफली की अधिक पैदावार के लिए उन्नत प्रौद्योगिकियाँ 35
12. आण्विक प्रजनन एवं बागवानी फसल सुधार हेतू जैव प्रौद्योगिकी 42
13. बेबीकार्न मक्का की उन्नत खेती 46
14. किन्नू की खेती का आर्थिक आकलन 49

वार्षिक शुल्क ₹ 80/- मनीआर्डर द्वारा | एक प्रति मूल्य ₹ 20/-

खरीफ की दलहनी फसल - अरहर की वैज्ञानिक खेती

मनमोहन पूनिया[1], अनिल कुमार चौधरी[2], विजय पूनिया[2], आर.एस. बाना[2] एवं श्रीपाल चौधरी[1]

[1]श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर

[2]सस्य विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

भारत में उगाई जाने वाली दलहनी फसलों में अरहर का चने के बाद दूसरा स्थान है। शाकाहारी लोगों के लिए अरहर की दाल प्रोटीन का मुख्य स्त्रोत है। इसकी दाल लगभग में 21 प्रतिशत प्रोटीन पाया जाता है। अरहर की पत्तियों व फलियों के छिलके पशुओं के लिए पौष्टिक चारे के रूप में काम लिये जाते है। अरहर की फसल उगाने से इसकी जड़ों में पाये जाने वाले राइजोबियम जीवाणु मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्वि करते है। इसके अतिरिक्त अरहर मृदा क्षरण रोकने में व वायु प्रतिरोधक फसल के रूप में भी उपयोगी है। इसे मिश्रित फसल के रूप में अन्य फसल के साथ उगाकर अतिरिक्त लाभ लिया जा सकता है।

जलवायु: आर्द्र व शुष्क दोनों प्रकार के गर्म जलवायु के क्षेत्रों में अरहर की खेती की जा सकती है। शुष्क जलवायु के ऐसे क्षेत्र इसकी खेती के लिए उपयुक्त रहता है जहाँ पर सिचाई सुविधा उपलब्ध हो। पौधों की उचित बढ़वार के लिए नम जलवायु उपयुक्त रहती है। इसकी खेती के लिए 75 से 100 से.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र उपयुक्त है। पौधों पर फूल आते समय व फलियाँ बनते समय तेज धूप की आवश्यकता होती है। फसल पकते समय पाला पड़ना व तेज वर्षा होना हानिकारक है।

मृदा: अरहर की खेती दोमट या चिकनी दोमट एवं कपास की भारी काली मृदाओं जिनमें जल निकास की उचित व्यवस्था हो में सफलतापूर्वक की जा सकती है। मृदा का पी.एच. मान 6.5 से 7.5 होना चाहिए।

खेत की तैयारी: रबी फसल की कटाई उपरांत एक गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करते है। इसके बाद दो से तीन जुताई हैरो या कल्टीवेटर अथवा देशी हल से करते है। मिश्रित फसल के रूप में उगाने पर सह फसल मक्का या ज्वार आदि के अनुसार खेत की तैयारी की जाती है।

उन्नत किस्में

प्रभात: यह किस्म 115 से 135 दिन में पकती है। इसकी ऊचाई 150-170 से.मी. होती है। दानों का रंग पीला तथा 1000 दानों का भार 50 से 55 ग्राम होता है। उपज 10-12 क्विंटल प्रति हैक्टर प्राप्त होती है।

आई.सी.पी.एल.-87 (प्रगति): यह बौनी किस्म 130 से 140 दिन में पकती है तथा उखटा रोग के प्रतिरोधी है। इसके दाने बड़े व हल्के भूरे रंग के होते है। उपज 10-15 क्विटंल प्रति हैक्टर होती है।

ग्वालियर-3: यह किस्म 180 से 250 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी उंचाई 225 से.मी. से 275 से.

मी. तथा उपज 8 से 15 क्विंटल प्रति हैक्टर प्राप्त होती है।

मानक (एच 77-216): यह किस्म 130-135 दिन में पकती है। अधिक तापक्रम व सूखा सहन करने वाली इस किस्म से 18 से 20 क्विटंल प्रति हैक्टर उपज प्राप्त होती है।

यू.पी.ए.एस. 120: यह किस्म 120 से 125 दिन में पककर तैयार होती है। हल्के भूरे रंग के बीज वाली इस किस्म के 1000 बीजों का भार 67 ग्राम होता है।

सरिता (आई.सी.पी.एल. 85010): यह एक जल्दी पकने वाली किस्म है जो 150 से 155 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। पौधा मध्यम उंचाई (170-180 सेंटीमीटर) का होता है। इसकी फली में 3 से 4 दाने होते हैं जो मध्यम आकार के होते हैं। इसकी उपज लगभग 15 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है। इस किस्म की कटाई के उपरान्त अगली फसल गेहूं की ली जा सकती है।

इसके अतिरिक्त पूसा-33, पूसा-855, पूसा-991, पूसा-992, पूसा-2001, पूसा-2002, टाईप-21, शारदा-पारस आदि उपयुक्त किस्में है।

बीज दर व बीजोपचार - अरहर में बीज दर उसकी किस्म व बुवाई के समय पर निर्भर करती है अरहर की अकेली फसल के लिए 15 किलोग्राम तथा मिश्रित फसल के लिए 6-8 किलोग्राम प्रति हैक्टर बीज की आवश्यकता होती है। कवकजनित रोगों से बचाव हेतु बीजों को ट्राइकोडर्मा 5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करते है।

बीजों को शाकाणु संवर्ध से उपचारित करना: बीजों को कवकनाशी व कीटनाशी रसायन से उपचारित करने के बाद राजोबियम कल्चर व पी.एस.बी. संवर्ध से उपचारित करते है। इस हेतु 1.5 लीटर पानी में 300 ग्राम गुड़ डालकर गर्म करते है घोल ठण्डा होने पर इसमें प्रत्येक कल्चर की 300 ग्राम मात्रा मिलाते है। इस मिश्रण से प्रति हैक्टर में बोये जाने वाले बीज को इस प्रकार मिलाते हैं कि सभी बीजों पर एक समान पर्त चढ़ जाये। इसके बाद इन बीजों को छाया में सुखाकर शीघ्र बुवाई के काम लेते हैं।

बुवाई का समय व विधि: जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है वहाँ 1 से 15 जून तक फसल की बुवाई कर देनी चाहिए। वर्षा आधारित फसल के लिए जुलाई मे मध्य तक वर्षा होते ही बुवाई कर देते हैं। देर से बोई गई फसल पर कीट व रोगों का प्रकोप अधिक होता है। शुद्ध फसल के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 से 75 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 15 से 20 से.मी. रखी जानी चाहिए। हल के पीछे पोरा लगाकार बुवाई करते हैं, ध्यान रहे कि बीज 5 से.मी. से अधिक गहरा न गिरे। प्रभात व बौनी किस्मों के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 से.मी. रखी जानी चाहिए।

खाद व उर्वरक: लेग्यूमिनोसी कुल की फसल होने से अरहर की फसल में भी नाइट्रोजन की अधिक आवश्यकता नहीं होती। मृदा परीक्षण के आधार पर फॉस्फोरस व पोटाश भी आवश्यकतानुसार मात्रा दी जानी चाहिए। पौधों के प्रारम्भिक विकास के लिए 18 से 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40 से 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 30 कि.ग्रा. पोटाश की जरूरत रहती है इनकी पूर्ति डी.ए.पी. तथा म्यूरेट ऑफ पोटाश से करना उचित रहता है।

सिंचाई: अरहर की मूसला जड़े होने के कारण जमीन में अधिक गहराई तक जाती है। यदि सिंचाई सुविधा उपलब्ध हो तो एक या दो सिंचाई पर्याप्त है। वर्षा न होने पर पहली सिंचाई फसल की प्रारंभिक अवस्था में ही की जानी चाहिए। दूसरी सिंचाई सर्दी में फूल व फलियां बनते समय की जानी चाहिए। यह फसल पानी की कमी तो सहन कर लेती है लेकिन जल भराव होने पर भारी हानि होती है, इसलिए जल निकास की उपयुक्त व्यवस्था की जानी चाहिए।

अन्तःकृषण: अधिक वर्षा होने पर इस फसल में खरपतवार बहुत तेजी से बढ़ते है। अतः बुवाई के 20-25 दिन बाद एक निराई-गुड़ाई खुरपी की सहायता से करते है। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को रासायनिक विधि से नष्ट

पादप संरक्षण

प्रमुख रोग व प्रबन्धन

प्रमुख रोग	रोग विवरण	रोग लक्षण	रोग प्रबन्धन
तना गलन	यह रोग मिट्टी से फैलता है तथा फसल की प्रारम्भिक अवस्था (एक से सात सप्ताह पुराने पौधे) में अधिक आती है। तेज हवा, बादलों से भरा आसमान, रिमझिम बारिश व 25 डिग्री सेंटीग्रेट के आसपास तापमान होने पर यह रोग बढ़ जाता है। पौधे जैसे-जैसे बड़े होते हैं रोग से सहनशील हो जाते हैं।	यह रोग फाईटोफथोरा ड्रेश्लेरी नामक कवक से होता है। इस रोग से ग्रसित पौधा जल्दी सूखकर मर जाता है। रोगग्रस्त पौधे की पत्तियों पर सड़े गीले धब्बे तथा तने व शाखाओं पर भूरे काले धब्बे दिखाई देते हैं और तना वहां से सड़कर टूट जाता है। इस रोग से केवल तना व पत्तियां ही प्रभावित होती हैं।	खेत में जल की निकासी का उचित प्रबन्ध करें। फसल की प्रारम्भिक अवस्था में खेत से खरपतवार निकाल दें। बीज का उपचार रिडोमिल एम जेड 3 ग्राम प्रति किलोग्राम की दर से करने के बाद ही बीजाई करें। रोग के लक्षण प्रकट होने पर रिडोमिल एम जेड 3 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर 15 दिन के अन्तराल पर दो बार छिड़काव करें।
फ्यूजेरियम विल्ट	यह रोग रोगग्रस्त बीज व मिट्टी से फैलता है। इसका प्रकोप गर्म स्थानों पर अधिक होता है। फसल की किसी भी अवस्था में इस रोग का प्रकोप हो सकता है।	यह रोग फ्यूजेरिय उडम नामक कवक से होता है। इस रोग से ग्रसित पौधा या तो पूरी तरह से सूख जाता है या पौधे का कुछ ही भाग सूखता है। रोगग्रस्त पौधे के तने या शाखाओं को बीच से फाड़ने पर बीच वाले हिस्से में जाइलम भूरा या काला दिखाई देता है।	तीन से चार वर्ष का फसल चक्र अपनांए व रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन करें। बीज को वैविस्टिन 3 ग्राम या थिरम 3 ग्राम प्रति किलोग्राम की दर से उपचारित करके ही बीजाई करें।
ड्राईरूट राट	यह रोग फसल की प्रारम्भिक अवस्था तथा फूल व फल आने के समय दिखाई देता है।	यह रोग राईजोक्टोनिया बटाटीकोला नामक कवक से होता है। इस रोग से प्रभावित पौधे खेत में इधर उधर सूखे हुए दिखाई देते हैं। रोगग्रस्त पौधे की जड़ें सूख जाती हैं और जमीन से प्रभावित पौधा निकालने पर पतली जड़ें मिट्टी में ही रह जाती हैं। यह रोग उस समय दिखाई देता है जब दिन का तापमान 30 डिग्री सेंटीग्रेट या अधिक होता है।	उचित फसल चक्र अपनांए। रोगरोधी किस्मों का चयन करें और बीज को कैप्टान 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करके ही बीजाई करें।
बंध्यता मोजैक	इस रोग से प्रभावित पौधे हल्के हरे रंग के दिखाई देते हैं जो स्वस्थ पौधे से बिल्कुल भिन्न होते हैं।	यह रोग एक विषाणु से होता है। इस रोगजनक विषाणु का वाहक इरिओफिड माइट (ऐसेरिया कैजेनाई) है। प्रभावित रोगी पौधे की पत्तियां छोटी होती हैं जिस पर अनियमित आकार के हल्के हरे और साधारण हरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। रोगी पौधों में फूल व फल नहीं लगते हैं। पौधे छोटे रह जाते हैं जिससे पौधा झाड़ीनुमा दिखाई पड़ता है।	खेतों की साफ सफाई पर विशेष ध्यान दें। माईट की रोकथाम के लिए कीटनाशी का प्रयोग करें।
चूर्णलासिता रोग	ग्रसित पौधे की पत्तियां पीली पड़कर गिर जाती हैं। यह रोग 25 से 30 डिग्री सेंटीग्रेट पर तीव्रता से फैलता है।	यह रोग ओडिआप्सिस टाउरिका नामक कवक से होता है। रोगी पौधे की पत्तियों, फूलों व फलियों पर सफेद चूर्ण दिखाई देता है। रोग का अधिक प्रकोप होने पर पत्तियां गिर जाती हैं।	आरम्भिक अवस्था में रोग के लक्षण दिखने पर घुलनशील सल्फर 1000 ग्राम प्रति 750 लीटर पानी में घोल कर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

प्रमुख कीट व प्रबन्धन

प्रमुख कीट	कीट विवरण व लक्षण	कीट प्रबन्धन
धारीदार भृंग	प्रौढ़ मुलायम पत्तियों व फूलों को खा जाती हैं जिससे काफी नुकसान होता है।	फसल में फूल आने से पहले व फूल आने की अवस्था पर 625 मिलीलीटर मिथायल पैराथियान (मैटासिड 50 ई. सी.) 625 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।
फली बग	कीट के युवा व प्रौढ़ पत्तों, तने, कलियों व फलियों से रस चूसते है। जिससे पौधा कमजोर हो जाता है। पत्तों की उपर की सतह पर छोटे छोटे सफेद या पीले धब्बे पड़ जाते हैं जिससे इस कीट के प्रकोप का पता चलता है। अधिक प्रकोप होने पर फलियां सिकुड़ जाती हैं व दाने छोटे रह जाते हैं।	धारीदार भृंग के लिए बताए गए प्रबन्ध के अतिरिक्त डाईमिथोएट (रोगर 30 ई. सी.) या मिथाइल डैमिटान (मैटासिस्टाक्स 20 ई.सी.) या मोनोक्रोटोफास (मोनोसिल 36 एस. एल.) 625 मिलीलीटर दवा को 625 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।
फली मक्खी	यह कीट फलियों में बढ़ रहे दानों को क्षति पहुंचाते हैं। पूर्ण विकसित युवा (मैगट) बीज से बाहर निकलकर फली में छेद बनाता है जिससे व्यस्क मक्खी बाहर निकल जाती है। ग्रसित बीज खाने व बीज योग्य नहीं रहते हैं।	इसकी रोकथाम के लिए 2 ग्राम कार्बेरिल या 1 मिलीलीटर मोनाक्रोटोफास को प्रति लीटर पानी की दर से 10 से 15 दिन के अन्तराल पर दो बार छिड़काव करें।
फली छेदक	सुण्डियां पत्तियों, फूलों और फलियों पर निर्वाह करती हैं और फलियों में छेद करके उसके दाने खाती हैं जिसकी वजह से उपज में काफी कमी आती है।	खेत में साफ सफाई का विशेष ध्यान रखें। फीरोमोन ट्रैप का इस्तेमाल करें। न्यूक्लियर पोलिहेड्रोसिस विषाणु (एन.पी.वी.) 20 एल. ई. को 50 लीटर पानी में घोल कर प्रति बीघा की दर से छिड़काव करें। केम्पोलेटिस क्लोरीडी व ट्राइकोग्रामा किलोनिस परजीवी का इस्तेमाल करें। अधिक प्रकोप होने पर फसल में 50 प्रतिशत फूल आने पर 1 मिलीलीटर मोनोक्रोटोफास (मोनोसिल 36 एस. एल.) या 1 मिलीलीटर डेल्टामैथ्रिन (डैसिस 2.8 ई. सी.) या 1.5 ग्राम कार्बेरिल (सेविन 50 डब्लयू. पी.) प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।

करने के लिए पेन्डीमिथालिन 30 ई.सी. की 1.5 लीटर मात्रा को 800 लीटर पानी में मिलाकर बुवाई के तुरन्त बाद व अकुंरण से पहले प्रति हैक्टर छिड़काव करना चाहिए अथवा फ्लूक्लोरेलिन (बेसालिन) की 1 कि.ग्रा मात्रा बुवाई से पूर्व प्रति हैक्टर मृदा में भली भांति मिलाना चाहिए।

कटाई: अगेती किस्मों की नवम्बर-दिसम्बर में व देर से पकने वाली किस्मों की कटाई मार्च-अप्रैल में की जाती है। कटाई के बाद फसल को एक सप्ताह तक खेत में ही सूखने के लिए छोड़ देते हैं। अच्छी प्रकार सुखाकर लकड़ी से पीटकर या जमीन पर पटक कर फलियां को अलग कर लेते हैं। मढ़ाई के लिए पुल मैन थ्रेसर भी काम में लिया जा सकता है।

उपज: किस्मों के अनुसार एवं उन्नत कृषि क्रियायें अपनाने से अरहर की उपज 15 से 20 क्विंटल/हैक्टर प्राप्त हो जाती है।

भण्डारण: दानों को अच्छी प्रकार सुखाकर जब उनमें नमी की मात्रा 10-12 प्रतिशत रह जाये तो इसे भण्डार गृह में रख देते है।

□□□

ऊसर भूमि सुधार कृषि उत्पादन बढ़ोत्तरी में आवश्यक

भैंरूलाल कुम्हार एवं रतन लाल सुवालका
कृषि विज्ञान केन्द्र, कोटा

हमारे देश की ऊसर समस्या से ग्रस्त भूमि जो कि लगभग 70 लाख हैक्टर है उसे सुधार कर फसल उत्पादन योग्य बनाया जाना है। ऐसा करने से 350 से 500 लाख टन अतिरिक्त अनाज पैदा किया जाना संम्भव है। हमारे देश के अर्द्धशुष्क गंगीय जलौढ़ क्षेत्र, राजस्थान एवं गुजरात के शुष्क क्षेत्र, दक्षिणी राज्यों के शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्र एवं समुद्र तटीय जलोढ़ भूमि क्षेत्रों में इस तरह की समस्या वाली भूमियां है जिनको कि निम्न प्रकार बांटा गया है।

1. **क्षारीय** - जिनमें विनिमयशील सोडियम की अधिकता पौधों की बढ़वार में बाधक होती है।
2. **लवणीय**- जिनमें घुलनशील लवणों की अधिकता पौधों की बढ़वार में बाधक होती है।
3. **लवणीय क्षारीय** - इन मृदाओं में विनिमयशील सोडियम एवं घुलनशील लवणों की अधिकता दोनों ही पौधों की बढ़वार में बाधक है।

लवणीय एवं क्षारीय भूमियों की पहचान

1. बरसात या सिंचाई का पानी क्षारीय भूमि में कई दिनों तक भरा रहता है जबकि लवणीय भूमि में पानी का भराव नहीं होता।
2. लवणीय भूमि में धरातल पर ठहरा पानी साफ रहता है जबकि क्षारीय भूमि में पानी गहरे काले रंग का कीचड़ एवं चिकनाई युक्त हो जाता है।
3. लवणीय भूमि में शुष्क मौसम में सफेद रंग की परत ढक जाती है जबकि क्षारीय भूमि में ऐसा नहीं होता।
4. क्षारीय भूमि में भूमिगत जल प्रायः मीठा होता है जबकि लवणीय एवं लवणीय क्षारीय भूमि में लवणीय होता है।
5. लवणीय भूमि अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में अधिक पायी जाती है जबकि क्षारीय भूमि अर्द्धशुष्क एवं नम क्षेत्रों में पायी जाती है।
6. सामान्य व लवणीय भूमि में पौधों की जड़े 45 से 90 से.मी. गहरी जा सकती है जबकि क्षारीय भूमि में केवल 10-15 से.मी. तक ही एक कठोर परत बनी होने की वजह से रूक जाती है।
7. पानी का निकास एवं रिसाव लवणीय भूमि में सामान्य होता है जबकि क्षारीय भूमि में काफी कम होता है।
8. सामान्य व लवणीय भूमि उपयुक्त बाह पर रहती है जबकि क्षारीय भूमि कठोर एवं अत्यधिक बँध जाती है। और मृदा धरातल पर पपड़ी भी बन जाती है।

लवणीय एवं क्षारीयता के प्रभाव

लवणीयता से मृदा विलयन में लवणों की सांद्रता बढ़ने से पौधों में पानी की ग्रहणता मृदा में नमी होने के बावजूद भी नहीं हो पाती है तथा पौधे मुरझा जाते है लेकिन मृदा के भौतिक गुण प्रभावित नहीं होते। भूमि में क्षारीयता सोडियम की अधिकता से होती है जो कि अन्य पोषक तत्व जैसे कैल्शियम एवं मैंग्नीशियम के शोषण पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है जिसे सूक्ष्म तत्वों की प्रत्यता भी घट जाती है एवं फसल उत्पादन पर कई प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं।

ऊसर भूमि सुधार

ऐसी भूमियों में सफलतापूर्वक फसल उत्पादन हेतु सुधार के निम्न मुख्य साधन है।

1. भूमि का समतलीकरण एवं गहरी जुताई करना।
2. ढलान के आधार पर मेड़ बंदी करना।
3. बरसात के पानी या लवण मुक्त पानी का भराव करना।
4. पानी में घुले लवणों का रिसाव
5. पानी के निकास में सुधार
6. उपयुक्त भूमि सुधारकों का उपयोग (लवणीय क्षारीय मृदा में जिप्सम आवश्यकता के आधार पर जिप्सम मिलाना)
7. क्षारीय मृदाओं में रेत व लवणीय मृदाओं में चिकनी मिट्टी मिलाना।
8. कार्बनिक पदार्थो जैसे हरी खाद, गोबर की खाद, फसलों के अवशेष, प्रेस मड एवं मोला सिस आदि मिलाना
9. लवण प्रतिरोधी फसलें उगाना।
10. लवण प्रतिरोधी घास जैसे सूडान, रोड़ एवं परा घास आदि लगाना।

ऊसर भूमि सुधार के तरीके

1. भौतिक एवं जल यांत्रिकः भूमि लवणीय हो या क्षारीय सर्वप्रथम भूमि सुधार हेतु यांत्रिक तरीकों का ही इस्तेमाल होता है जैसे गहरी जुताई करना, मृदा की नीचे वाली कठोर परत को तोड़ना, रेत भरना एवं मृदा स्तरों को उल्टा करना जिसे कि भूमि में पानी एवं वायु संचार में सुधार हो। अधो मृदा की कठोर परत को तोड़ना क्षमता युक्त ट्रेक्टर से सम्भव है। बालू रेत मिलाने से पानी एवं हवा का मृदा में संचारबढ़ता है यह क्रिया भूमि पर रेत बिछा कर जुताई करने से ही हो जाती है

2. जैविकः इस तरीके में भूमि में घास उगाकर, पेड़ पौधे उगाकर फसलों की हरी खाद द्वारा, फसलों के अवशेष मिलाकर, गोबर की खाद मिलाकर, प्रेस मड, मोलासिस एवं अन्य कार्बनिक पदार्थो का उपयोग करके ऊसर भूमि का सुधार किया जाता है।

3. रासायनिकः इस तरीके के अन्तर्गत रासायनिक भूमि सुधारकों का प्रयोग किया जाता है जो कि निम्न है

- **कैल्शियम के घुलनशील लवणः** जैसे कैल्शियम क्लोराइड एवं जिप्सम।
- **कैल्शियम के कम घुलनशील लवणः** जैसे लाइम स्टोन, रॉक फास्फेट या बेसिंग प्लेग।
- **अम्लीयता पैदा करने वाले पदार्थः** जैसे सल्फर, आइरन सल्फेट, आइरन पाइराइट, एल्युमिनियम सल्फेट एवं सल्फ्युरिक अम्ल आदि।

इन सभी सुधारकों में जिप्सम का उपयोग अत्यधिक होता है इसकी वजह इसका आसानी से उपलब्ध होना व उपयोग में आसानी है।

भारी लवणीय क्षारीय भूमि सुधार की कारगर विधिः डॉ. फतकरण एवं डॉ. एफ.एम. कुरेशी (मृदा विज्ञान विभाग, रा. कृ. महाविद्यालय, उदयपुर) ने राजस्थान की भारी लवणीय क्षारीय भूमि सुधार के लिए एक आसान, सस्ती एवं असरदार विधि विकसित की है जिसके अन्तर्गत मृदा में आधी जिप्सम आवश्यकता की मात्रा, 10 टन गोबर की खाद एवं 10 टन बालू रेत प्रति हैक्टर भूमि सुधार सामग्री के रूप में काम में लें तथा साथ में ऊसर भूमि सुधार के साधनों को जैसेः गहरी जुताई, समतलीकरण, मेड़ बन्दी, पानी का भराव एवं रिसाव का इस्तेमाल करना शामिल है इस तरीके से भूमि सुधार की लागत लगभग ₹ 6000/- प्रति हैक्टर आंकी गई है और सामान्य वर्ष में उसी वर्ष कास्तकार को कम से कम ₹ 7000/- की आय है लवण प्रतिरोधी फसलों जैसे गेंहू (खारचिया-65) जौ (बी.एल.-2) एवं सरसों (टी-59) उगाकर ली जा सकती है। तथा आने वाले दो वर्षों में लगभग ₹ 12000/- का मुनाफा हासिल किया जा सकता है।

ऊसर प्रतिरोधी फसलों जैसे- जौ, गेंहू, कुसुम, ज्वार, बाजरा, राया (सरसों), मक्का, सूरजमुखी, बरमूदा घास, पारा घास एवं कर्नाल घास आदि उगाना भूमि सुधार के प्रथम व द्वितीय वर्ष तक लें।

□□□

वेक्टर-वायरस प्रबंधन में पलवार की भूमिका

स्वाति साहा, सावर्णि त्रिपाठी, राज वर्मा एवं के. चंद्रशेखर
भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, पुणे-411067

पॉलिथीन का विकास 1938 में एक प्लास्टिक फिल्म के रूप में हुआ। 1950 के दशक में इसको सब्जी फसलों के उत्पादन में पलवार के रूप में शुरूआत हुई जिससे फसल उत्पादन क्रांति हुई। प्लास्टिक पलवार को सब्जी उत्पादन प्रणाली के रूप में उपयोग कर के विभिन्न लाभ हुआ है। विभिन्न सब्जियों के किस्में जैसे तरबूज, स्क्वैश, खीरे, टमाटर, मिर्च, बैंगन, भिंडी, स्वीट कॉर्न, ककड़ी इत्यादि को सफलतापूर्वक प्लास्टिक पलवार का उपयोग करने से, फसलों में कुल उपज, गुणवत्ता एंव परिपक्वता से विकसित किया जा सकता है।

फसल उत्पादन में पलवार का प्रयोग लाभकारी अभ्यास है। पलवार बस एक सुरक्षात्मक परत है, जो की मिट्टी के ऊपर फैला होता है। यह न केवल मिट्टी को समृद्ध करती है बल्कि इसकी रक्षा करती है। साथ ही यह पौधों को एक बेहतर पर्यावरण प्रदान करता है। पलवार मिट्टी की नमी संरक्षित रखने में सहायक है। वर्षा की बूदों से होनेवाली मिट्टी की परत को होने वाली हानि से भी बचाता है।

सब्जियाँ, बीमारियों के लिए अतिसंवेदनशील है, जिसमें की प्रमुख है विभिन्न विषाणु रोग। इन्हीं कारणों से भारत में सब्जी उत्पादन में काफी नुकसान होता है। कीटनाशी हस्तक्षेप होने से कीट से होने वाले नुकसान की समस्या कफी हद तक कम हो गयी है। साथ ही बीमारियों से बचाने के लिए किसान अधिक मात्रा में कीटनाशक दवाइयाँ छिड़कते हैं, जिससे की फलों और सब्जियों में कीटनाशक अवशेषों की समस्या होती है। इन सब्जियों को खाने से विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ होने की संभावनायें बढ़ सकती हैं। आमतौर पर अधिक मात्रा से कीटनाशक प्रयोग करने से ये कीटों में प्रतिरोध विकसित होने की संभावना अधिक हो जाती है। इसके अलावा, कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से अवांछनीय समस्याओं का विकास होता है जैसे की प्राकृतिक शत्रुओं का विनाश, कीट पुनरुत्थान और नियंत्रण रणनीति की विफलता। ऐसी परिस्थितियों में कीट नियंत्रित करने के लिए वैकल्पिक रणनीति होनी चाहिए। इन परिस्तिथियों में पलवार एक अच्छी उपाय है, जो विषाणु वाहक कीटों को नियंत्रित एवं प्रबंधन के लिए एक अच्छा विकल्प है। इससे अच्छी गुणवत्ता का उत्पादन होने में मदद करता है।

पलवार के प्रकार: पलवार कई रूपों में उपलब्ध हैं। पलवार के दो प्रमुख प्रकार के है: अजैवी और जैविक। अजैवी पलवार में पत्थर के विभिन्न प्रकार, लावा रॉक, चूर्णित रबर, भू टैक्सटाइल कपड़े, और अन्य सामग्री शामिल है। अजैवी पलवार सड़ती नहीं है, और अक्सर बार-बार प्रयोग में लाई जा सकती है। यह पलवार मिट्टी की संरचना में सुधार नहीं करती और न ही मिट्टी की जैविक सामग्री बढ़ाती है, न पोषक तत्वों को प्रदान करती हैं। इन कारणों के लिए, उद्यान-विद्या विशारद/विशेषज्ञ कार्बनिक पलवार पसंद करते हैं।

जैविक पलवार जैसे धान के पुआल, लकड़ी के चिप्स, पाइन की सुइयाँ, सख्त एवं मुलायम लकड़ी की छाल, कोकोआ भूसा, पत्ते, खाद इत्यादि । आमतौर पर

पौधों से प्राप्त अन्य उत्पादों की एक किस्म भी इसमें शामिल हैं। जैविक पलवार सम्बंधित सामग्री के विघटित होने का दर, जलवायु, मिट्टी और वर्तमान सूक्ष्मजीवों पर निर्भर करता है । यह पलवार तेजी से विघटित होती है इसलिए इसे अधिक बार मंगाया जाना चाहिए। साथ ही इस पलवार में विघटन की प्रक्रिया जल्दी होती है और इसी कारण मिट्टी की गुणवत्ता और उपजाऊ क्षमता ज्यादा है।

कीट और रोगों के नियंत्रण: रिफ्लेक्टिव पॉलिथीन पलवार, कीट की संख्या को कम करती है तथा छोटे पौधों पर आक्रमण करने से पीछे हट जाते हैं। सिल्वर रंग की पॉलिथीन पलवार में पॉलिथीन कैनवास के ऊपर एल्यूमीनियम की एक पतली परत होती है, जो की अल्ट्रावायलेट किरणों को रिफ्लेक्ट करते हैं। विषाणु वाहक कीड़े, जैसे की एफिड, सफेद मक्खी, लीफ होप्पर्स को भ्रमित करते हैं, ताकि वे पौधों पर अवतरण एवं भक्षण न कर सकें। एफिड अक्सर हानिकारक विषाणु को फैलाता है, जो कि फसलों के उत्पादन की गुणवत्ता और मात्रा को कम कर देती है। फसलों में एफिड के अवतरण को कम करने के लिए, पलवार इस्तेमाल किया जाता है। जमीन को ढकने के लिए सिल्वर पॉलिथीन पलवार का उपयोग करने से, पौधों में लगे एफिडस प्रतिकर्षित होते हैं जिससे की विषाणु का संक्रमण कम होने का प्रभाव पाया गया है । पलवार का उपयोग करने से विषाणु रोग लगभग कम से कम होते हैं। बिना पलवार की खेती के मुकाबले, पलवार वाली खेती में पौधों की वृद्धि एवं विकास बेहतर होती है। साथ ही फसल की पैदावार और गुणवत्ता भी अच्छी होती है। सिल्वर पलवार के उपयोग से टमाटर स्पॉटेड विल्ट विषाणु का प्रभाव काफी कम हो जाती है, जो की थ्रिप्स से ट्रांसमिट होता है। पलवार का उपयोग एक महत्वपूर्ण कार्यनीति है, जो कि विषाणु बीमारियों को नियंत्रण में रखने के सहायक हैं।

सामान्य पलवार संस्तुति: सबसे पहले, उचित पलवार के चयन का ज्ञान होना आवश्यक है। उपयोग और मानदंडों के आधार पर, पलवार का चयन आवश्यक है। सही पलवार का उपयोग से पानी का संगरक्षण, पौधे की जड़ों को चरम तापमान की सीमाओं से बचाना, मिट्टी में सुधार, और खरपतवारों का नियंत्रण करने में मदद कर सकते हैं। विषाणु वाहक जैसे की एफिड, सफेद मक्खियों जो की विषाणु का प्रसारण करता है, सिल्वर पलवार उनके लिए प्रतिकर्षक का कार्य करता है। इसी तरह सफेद पलवार खरपतवार को नियंत्रित करने के लिए और तापमान को बढ़ाने के लिए काले पलवार उपयोगी है। हमारे संस्थान में इसका प्रयोग भिंडी, टमाटर और शिमला मिर्च में, वेक्टर वायरस के प्रबंधन में इसका महत्व पता चला है। सिल्वर पलवार की मोटाई 25 माइक्रोन और चौड़ाई 1.2 मीटर होती है। पुआल को कार्बनिक पलवार के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

खेत की तैयारी: प्लास्टिक पलवार का उपयोग, उचित स्थान सुनिश्चित करने के लिए, उसकी पूरी जानकारी होना आवश्यकता है। इसका उपयोग एक समभूमि बीज बिस्तर के साथ शुरू होता है। बड़े ढेले, मिट्टी और जैविक अवशेषों से यह मुक्त होना चाहिए। फसल अंतरालन के आधार पर, लकीरों की दूरी तदनुसार बनाते हैं। ड्रिप लाइनों को इन लकीरों पर रखा जाता है। ड्रिप्पर्स फसल के पौधे की दूरी के प्रति पौधे के रूप में लगाते हैं। ड्रिप्पर्स के बिछाने के बाद, इनके ऊपर पलवार रखा जाता है। सीमाओं में (10 सेमी) 7-10 सेमी, 45 डिग्री के कोण पर छोटे गहरे हल-रेखा में मिट्टी के अंदर दबा देनी चाहिए। इससे पलवार को मिट्टी के साथ बरकरार रखने के लिए मदद करता है। पलवार को बिना किसी सिकुड़न पर रखा जाना चाहिए। पलवार में किसी भी तरह के शिकन नहीं होना चाहिए और उसको बिस्तर पर तंग करके रखा जाता है। पलवार में फसल अंतरालन के अनुसार आवश्यक दूरी पर छेद कर दिया जाता है। इसी छेद में बीज/पौध बोया/रोपण किया जाना चाहिए। पुआल भी इसी तरह, एक समान परत के साथ बेड पर रखा जाता है और मिट्टी के साथ दबा देना चहिये ताकि वे जमीन के साथ जुड़े रहें।

पलवार से होने वाले लाभ

1. अपक्षरण से मिट्टी की रक्षा करता है।
2. भारी बारिश के प्रभाव से संहनन कम कर देता है।
3. वाष्पीकरण के माध्यम से मिट्टी की नमी कम होने से, पलवार एक संरक्षण के रूप में सहायक है। यह अक्सर पानी की आवश्यकता कम कर देता है।
4. मिट्टी का तापमान बनाए रखता है।
5. खरपतवार अंकुरण और विकास को रोकता है।
6. फलों और सब्जियों को साफ रखता है।
7. यह मिट्टी के संवाह से रोकता है और साथ ही चरम गर्मियों और सर्दियों के तापमान से जड़ों की रक्षा करता है।
8. पलवार, मृदा जीव विज्ञान, वायु संचारण, संरचना (मिट्टी के कणों के एकत्रीकरण), और जल निकासी को समय, के साथ सुधार करती हैं।
9. कुछ प्रकार के पलवार मिट्टी की उर्वरता में सुधार लाती है, जैसे की धान की पुआल।
10. कीट की कमी।
11. पलवार के इस्तेमाल से विषाणु रोग के वाहक कम से कम होते हैं।
12. अन्य फफूंद और जीवाणु जनित रोग को कम करता है।

निष्कर्ष

वेक्टर वायरस प्रबंधन के लिए पलवार एक अच्छा तकनीकी है। पलवार के उपयोग से अगेती फसल और अधिक पैदावार संभव है। सिल्वर पॉलिथीन पलवार, एफिड, सफेद मक्खियों आदि को नियंत्रित करने के लिए एक अच्छा विकल्प है। पुआल को पलवार के रूप में उपयोग करना भी एक सबसे अच्छा उपाय है, जो की सस्ता, जैविक और बायोडिग्रेडेबल है। पलवार के ऊपर अनुसन्धान करके इस नतीजे पर पहुँचे, कि पलवार के उपयोग से किसान भाई लाभान्वित होंगे और साथ ही अच्छी गुणवत्ता फसल का उत्पादन होगा।

□□□

किसानों की आय दोगुनी करना: एक महत्वपूर्ण कदम

विनय कुमार, मो. हाशिम, आशिष कुमार एवं सी.बी. सिंह
भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, पूसा, बिहार

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ 70% जनसंख्या की आजीविका कृषि पर आधारित है। यहाँ ज्यादातर खेती वर्षा पर निर्भर है। देश की कृषि हमेशा से सौतेले व्यवहार और विकास के मॉडल की भेंट चढ़ती रही है। उसका कारण यह है कि देश में उत्पादन और मूल्य बढ़ने के साथ-साथ कृषि की जीडीपी में भागीदारी घटती जा रही है जिसके परिणाम स्वरूप सरकारी और प्राइवेट दोनों निवेश कम हो रहे हैं। अत: आज जीडीपी का 1.5 से 2% तक ही निवेश हुआ है जबकि योगदान 15% से हमेशा अधिक रहा है। अगर देश में कृषि में बड़ा निवेश होता है तो उत्पादन बढ़ेगा, लघु एवं कुटीर उघोग बढ़ेंगें निर्यात बढेगा, पलायन रूकेगा, बेरोजगारी रूकेगी तथा किसान आत्महत्या भी रूकेगी। आज खेती में बड़े निवेश क्रेडिट, सिंचाई, मौसम, उन्नत बीज, बाजारीकरण, प्रोसेसिंग, भण्डारण, हेल्थ एजुकेशन में करने की जरूरत है।

किसानों की आय दोगुनी करने का उद्देश्य, खेती के प्रति लगाव बढ़ाना शोध विकास एवं बढ़ती किसानों का आत्महत्या रोकना है। प्याज, लहसुन, टमाटर, आलू और दलहन की बंपर फसल होने पर भी सही दाम या मूल्य नहीं प्राप्त होता है। इस दिशा में इजाफा होगा जैसे - फसल बीमा योजना और ई-मंडी की राष्ट्रीय स्तर की शुरूआत 14 अप्रैल 2016 को किसानों की फसल की खरीद-ब्रिकी के लिए राष्ट्रीय स्तर पर देश भर में उपयोग किया गया तथा यूरिया पूर्णत: नीम लेपित खाद का भी प्रयोग हुआ जिससे किसानों को पहले ही साल 2016 में प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना सफल हुई जो खरीफ सीजन 2016 के 3 महीने के अदा 3 करोड़ 67 लाख किसानो नं फसलों का बीमा कराया ।

- प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना में बीमा दर अब तक का न्यूनतम खरीफ के लिए 2% रबी के लिए 15% और बाग़वानी फसलों के लिए 5% तय हुआ है।

  वर्ष 2016 से पहली बार बीमा वितरण वाली पावती रसीद किसानों के बीच वितरित की जा रही है जो उनके लिए पॉलिसी कागजात के रूप में भी काम करेगी।

- किसानों की आय दोगुनी हो सकती है यदि सरकार द्वारा कारपोरेट सहायता, स्पेशल इकोनोमिक जोन, कोस्टल इकोनोमिक जोन आदि की राहत कम या खत्म करके इसका उपयोग किसानों को देना चाहिए। इस प्रकार किसानों की आय दोगुनी हो जाएगी, जिसके कारण अगले 5 सालों में बेहद संतोषजनक परिणाम आयेंगे, क्योंकि यदि कृषि की आय बढ़ेगी तो किसानों द्वारा कृषि के सहायक व्यापार जैसे मुर्गी पालन, मछली पालन, बकरी, दुध रेशम व्यवसाय मधुमक्खी पालन जैसे व्यापार शुरू करके आय दोगुनी कर सकते हैं। जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था मजबूत होगी और गाँव में सम्पन्नता आएगी। जैसे -जैसे सम्पन्नता आएगी किसान लघु उद्योग करेंगे जैसे एग्री वेयर हाउसिंग, कोल्ड चेन, सप्लाई चेन, डेयरी पोल्ट्री, मीट, मछली, बागवानी, खेत मशीनीकरण एवं सूक्ष्म सिचाई, ग्रीन हाउस हाइड्रोपोनिक जैसी तकनीक अपने पास लायेगें तो आय दोगुनी होगी।

प्रोसेसिंग करके व्यापार करेंगे व इन्वेस्टमेट करेंगे जिसके कारण गाँव खेती के साथ-साथ एक फैक्ट्री बनकर सामने आयेगा जो देश की दूसरी कंपनियों से ज्यादा फायदा मिलेगा। इसी तरह भारत सरकार ने मील के पत्थर पहली बार ई-पशुधन हाट पोर्टल स्थापित किया। पहली बार देशी गायों की नस्लों के विकास और संरक्षण के लिए चौदह गोकुल ग्रामों की स्थापना की।

हर मोड पर पेड़ के साथ राष्ट्रीय कृषि वानिकी परियोजना शुरू की गयी जिससे आने वाले वर्षों में किसानों की आय बढ़ेगी। देश के हर खेत को पानी मिले विगत 30 माह में कुल 12 लाख 74 हजार हेक्टेयर क्षेत्र के सूक्ष्म सिंचाई के अंतर्गत लाया गया। 548 जिलों में जिला सिंचाई योजना तैयार की गई है। कई वर्षों से लंबित 23 वृहत एवं मध्यम सिंचाई परियोजनाओं को 12,517 करोड़ के माध्यम से पूरा किया जा रहा है। संरक्षित सिंचाई के लिए 27,835 हेक्टेयर क्षमता वाली 18,750 जल संचयन संरचनाओं का निर्माण किया गया है।

- इसी तरह मधुमक्खी पालन करके खादीग्राम उद्योग एवं लधु व्यवसाय हैं जिससे शहद एव मोम प्राप्त होता है। यह एक ऐसा व्यवसाय है, जो ग्रामीण क्षेत्रों के विकास का एवं आय का स्त्रोत होगा। तथा इस व्यवसाय के लिए चार तरह की मधुमक्खी इस्तेमाल होती हैं। ये हैं ऐपिस मेलीफेरा, ऐपिस इंडिका, ऐपिस डोरसाटा और ऐपिस फलोरिया। इस व्यवसाय के लिए ऐपिस मेलीफेरा मक्खियां ही अधिक शहद उत्पादन करने वाली और स्वभाव की शांत होती हैं। इन्हें डिब्बों में आसानी से पाला जाता है। इस प्रजाति की रानी मक्खी में अंडे देने की क्षमता भी अधिक होती है। अत: यह आय का अच्छा स्त्रोत होगा।

  मधुमक्खी से भरे एक बक्से की कीमत लगभग चार हजार रूपया होती है। इसमें मधुमक्खियों की विशेष भूमिका होती है वैसे भूमिहीन किसानों के लिए मधुमक्खी पालन एक अच्छा काम है। शहद उत्पादन के अलावा भी इसके कई फायदे है। फूलों की पैदावार में 30 से 40% एवं तिलहन-दलहन की पैदावार में लगभग 10-20% की बढ़ोत्तरी हो जाती है। बेहतर परागण के कारण फसलें भी एक ही समय पर पकती हैं जिससे हमे पैदावार में भी बढ़ोतरी होती है और हम बेच कर अच्छी आमदनी अर्ज कर सकते हैं।

मशरूम की खेती

वर्तमान समय में किसानो की कृषि जोत भूमि घटती जा रही है जिसके कारण पौष्टिक खाद्य पदार्थ का उत्पादन कर पाना एक समस्या बनता जा रहा है। इस परिस्थिति में मशरूम की खेती करना आवश्यक है क्योंकि मशरूम में प्रोटीन, विटामिन एवं खनिज लवण पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है तथा इसकी खेती के लिए खेती की जरूरत नहीं पड़ती है। बस एक छायादार कमरे के अन्दर चाहे वे घास का हो या कच्चे या पक्के मकान का कमरा हो, बस हवा का आवागमन एवं पानी की सुविधा हो, हम इससे साधारण पूर्वक मशरूम की खेती कर सकते हैं।

मशरूम की एक और विशेषता होती है कि यह अन्य सब्जी या अनाज की भाँति अधिक समय नही लेती है। 30 दिनों के अन्दर मशरूम तैयार हो जाता है और इसकी खेती से पर्यावरण को सुरक्षित रखा जा सकता है। मशरूम उत्पादन के पश्चात जो भी फसल का अवशेष बचता है, उसका उपयोग हम जैविक खाद बनाने में ला सकते हैं एवं अपने खेतों में डाल सकते है जिससे कि खेत की उर्वराशक्ति में वृद्धि होगी तथा खेत में जीवाश्म की मात्रा बढ़ेगी एवं हमारे खेत की भौतिक एवं रासायनिक संरचना में सुधार होगा जिससे हमें उत्पादन में बढ़ोत्तरी होगी और आय भी बढ़ेगी।

मखाना की खेती

मखाना का उत्पादन उत्तरी बिहार में कुछ जिलों में बहुतायत रूप से होता है। इसकी माँग देश और विदेशों

में काफी हैं। इसका उत्पादन तालाबों और सरोवरों में ही होता है। यह बिहार के मिथिलांचल की संस्कृति में मौलिक पक्ष को मजबूत करने में मछली पान और मखानों का खास योगदान हैं। ये एक औषधीय गुणों से भरे होते हैं। ये एंटीआक्सिडेंट होते हैं। इससे सांस, पाचन, पेशाब और शारीरिक कमजोरी से जुड़ी बीमारियों में उपचार किया जाता है। इसमें किसी तरह के उर्वरक का इस्तेमाल नहीं होता है। यह अपने लिए जैविक खाद खुद तैयार कर लेता है। तालाबों में सड़ी-गली फूल पती वनस्पति से इसे खाद मिल जाता है।

मखाना की खेती की विशेषता यह है कि इसकी लागत कम मुनाफा ज्यादा होता है। इसकी खेती के लिए तालाब होना चाहिए जिसमे 2 से ढ़ाई फीट तक पानी भरा होना चाहिए। उसके बाद इसकी खेती शुरू की जाए। यह मुद्रा कमाने वाला एक अच्छा स्त्रोत है। यह नारियल फल की तरह पूजा-पाठ में भी इस्तेमाल होता है एवं पर्व-त्योहारों में इसकी दिनो-दिन माँग बहुत होती जा रही है।

मखाना की उत्पति दक्षिण पूर्व एशिया चीन से हुई है। जापान व कोरिया में भी इसकी अधिक खेती होती हैं।

भारत में पूर्णिया, कटिहार, दरंभगा और मधुबनी में इसकी खेती खूब होती है। मखाना गर्भवती महिलाओ की पाचन शक्ति बढ़ाने और उनकी अन्य बीमारियों की रोकथाम के लिए यह बहुत फायदेमंद है।

सिंघाड़ा की खेती

सिंघाड़ा की खेती खासकर अब अधिक मुनाफे की खेती होती जा रही है क्योंकि इसकी मांग सात्विक खाद्य पदार्थ के रूप में बढ़ रही है। इसका आटा व्रत में खाया जाता है और उसके दाम भी बढ़िया मिल जाता है किसान मछली का पालन करके साथ-साथ सिंघाड़े की भी खेती उसी में कर सकते हैं एवं मुनाफा कमा सकते हैं। सिघाड़ा का फल ज्यादातर दो सिंघ का कांटा होता है। यह फल पानी में ही उगता है यह फल ज्यादातर अक्टूबर के माह में मिलता है। लोग इसे उपवास में भी खाते हैं। इसे खाने से पेट ठंडा रहता है और यह फल शरीर में पानी की कमी होने से बचाता है। इसकी खेती करने से आय एवं मुनाफे दोगुनी हो सकती है और इसे पानी फल सिघाड़ा भी कहते हैं।

एलोवेरा की खेती

एलोवेरा जिसका वानस्पतिक नाम एलोवेरा बारबेन्डसिस है तथा लिलिएंसी परिवार का सदस्य है। इसका उत्पति स्थान उत्तरी अफ्रीका माना जाता है। एलोवेरा को विभिन्न भाषाओं में अलग-अलग नाम से पुकारा जाता है । हिन्दी में ग्वारपाठा, घृतकुमारी, घीकुंवर, संस्कृत में कुमारी, अग्रेजी में एलोय कहा जाता हैं। एलोवेरा में कई औषधीय गुण पाये जाते है जो विभिन्न प्रकार की बीमारियों के उपचार में आयुर्वेदिक एवं यूनानी पद्धति में प्रयोग किया जाता है। यह-पेट के कीड़ों, पेट दर्द, वात विकार, चर्म रोग, जलने पर, नेत्र रोग, चेहरे की चमक बढ़ाने वाली त्वचा क्रीम, शेम्पू एवं सौन्दर्य प्रसाधन तथा सामान्य शक्तिवर्धक टौनिक के रूप में उपयोगी हैं। इसी कारण इसकी बढ़ती मांग के कारण किसान अगर खेती करे तो आय एवं मुनाफा ले सकते हैं। कई सारे लोग इसे तो अपनी मकानों की छत और बगीचे में भी लगाते हैं और बढ़ती मांग की वजह से इसकी खेती आय का अच्छा स्त्रोत हो रही है। इसकी खेती किसी भी जमीन पर आसानी से की जा सकती है। इसकी कम खर्च और सस्ती खेती होती है। इसकी खेती में कम सिंचाई की जरूरत पड़ती है। ये बंजर भूमि या अनुपयोगी जमीन का उपयोग करके खेती करे तो किसानों की आय दोगुनी होगी।

पुदीना (मेंथा) की खेती

वर्तमान समय के दौर में कृषि व्यवसायीकरण की ओर गतिशील दिखाई देती है। वहीं दूसरी ओर भारतीय कृषि आज भी परंपरागत खेती को अपने युवा कंधों व तकनीकी दिमाग पर बोझ बनाये बैठा है। वर्तमान समय में खेती से हटकर बाजार मांग के अनुसार फसल

उत्पादन का है जहाँ नये कृषि उत्पादो का उत्पादन कर किसान अपने आय को उच्चतम स्तर तक पहुँचा सके क्योंकि कम मेहनत और अधिक मुनाफा होने के चलते इस खेती को अपनायें और आय बढ़ायें।

मेंथा की अगेती मिन्ट तकनीक से किसान मेंथा बो सकते हैं। इस तकनीक के जरिए फसल बहुत कम पानी की खपत और 110 दिन की सामान्य अवधि के बाजाए 80-90 दिन में तैयार हो जाती है। कम समय में तैयार होने के चलते किसान खरीफ के पहले दो फसलें ले सकता है जिससे तेल उत्पादन और मुनाफा दोगुना हो सकता है।

पुदीना की फसल से करीब एक एकड़ में 50 लीटर तेल आसानी से निकलता है। इससे किसानों को करीब 40 हजार तक का मुनाफा हो जाता है।

मेंथा का उपयोग बड़ी मात्रा में दवाइयों सौन्दर्य प्रसाधनों, कन्फेक्शनरी, पेय पदार्थों सिगरेट, पान मसाला आदि में खुशबू के लिये किया जाता है जिससे इसका मांग बढ़ रही है। इसके अलावा इसका तेल निलगीरी (यूकेलिप्टस) के तेल के साथ कई रोगों में काम आता है। ये कभी-कभी गैस दूर करने के लिए दर्द निवारण हेतु तथा गठिया रोगों आदि में भी उपयोग किया जाता है। इसकी खेती करने से अच्छी आय एवं मुनाफा होगी।

□□□

जैविक खेती : महत्व और सुझाव

अनिल कुमार चौधरी एवं आर.एस. बाना
सस्य विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

आधुनिक कृषि ने उत्पादकता में एक प्रशंसनीय वृद्धि की है जिसका प्रमाण है अधिक अन्न प्रति हैक्टेयर एंव अधिक खाद्य उत्पादन। कृषि की आधुनिकतम, सघन खेती, एक स्थान पर एक ही फसल की बार-बार खेती ने पारिस्थितिक तंत्र में मौजूद पदार्थो और स्त्रोतों को न केवल नष्ट कर दिया है बल्कि हर स्तर पर जैविक विविधता का ह्रास भी किया है। अत: इस संदर्भ में हमारे मानसिक दृष्टिकोण में एक बदलाव की आवश्यकता है ताकि हम ऐसी कृषि की बात सोच सकें जो पारिस्थितिक तंत्र के अनुरूप हो जैसे इन्टेग्रेटिड पौध आहार और सुरक्षित खेती।

जैविक खेती

जैविक कृषि विभिन्न तकनीकों का मात्र समूह ही नही है यह कृषि की एक सम्पूर्ण पद्धति है तथा जिसमें पर्यावरण और प्रकृति की स्वच्छता व सतुंलन को हानि पहुंचाए बिना तथा भूमि की उपजाऊ क्षमता और पानी की गुणवत्ता को बनाए रखते हुये, लम्बे समय तक अधिक पैदावार की जा सकती है। इस प्रकार की खेती में रासायनिक खादों की जगह गोबर को उचित तरीकों से अपनाया जा सकता हैं ताकि खेती में होने वाले रसायनों के खर्चो को कम से कम करके अधिक पैदावार प्राप्त की जा सके।

जैविक खेती का महत्व

आधुनिक कृषि जगत में पर्यावरण की रक्षा हेतु जैविक खेती का विशेष स्थान है, जिसमें रासायनिक खादों और अन्य रसायनों आदि के प्रयोग को कम करने की सिफारिश की जाती है । लेकिन प्रमुख समस्या यह है कि इतनी अधिक मात्रा में जैविक खाद की पूर्ति कैसे की जाए जिससे पूरी रासायनिक खादों का प्रयोग कम या पूर्णतया बन्द किया जा सके। आधुनिक खेती, रसायनों पर अत्यधिक आश्रित होने के कारण कई तरह के प्रदूषण को जन्म देती है।

कृषि अवशिष्ट पदार्थों के अलावा कई प्रकार के काम न आने वाले पौधे पाये जाते है, जैसे लैन्टाना, नीला फूलणू व काग्रेंस घास इत्यादि। नीले फुलणू का हमारी कृषि में एक भारी प्रकोप है। यह पौधे पशुओं के लिए जहर हैं और मनुष्यों में इनसे भंयकर एलर्जी होती है। इसलिए इस प्रकार के पौधे मनुष्य और पशुधन स्वास्थ्य के लिए एक खतरा हैं। इसलिए इस प्रकार के पौधे व वेकार पदार्थों का विभिन्न तरीकों द्वारा जैविक खाद बनाने में इस्तेमाल किया जा सकता है जिससे खाद की मांग पूरी करने के साथ साथ प्रदूषण की समस्या पर भी नियन्त्रण किया जा सकता है। यह सत्य है कि हमारी कृषि उपज की गुणवत्ता में खासकर सब्जियों फलों और फूलों की गुणवत्ता में रासायनिक खादों की अपेक्षा, जैविक उर्वरकों के प्रयोग से ज्यादा सुधार होता है जिसका मुख्य कारण यह है कि जैविक उर्वरक जरूरी पोषक तत्वों के अतिरिक्त एन्जाइम, ग्रोथ रेगुलेटर भी पौधों को उपलब्ध कराते हैं। दूसरी ओर रासायनिक खादों द्वारा एक या कुछ ही पोषक तत्व पौधों को उपलब्ध हो पाते हैं। इसी कारण ऑर्गेनिक खादों के प्रयोग से पैदा की गई उपज की गुणवत्ता (स्वाद, रंग) बहुत अच्छी

होती है। प्राचीन काल से अच्छी उपज के लिए जैविक खादों का विशेष स्थान रहा है। आधुनिक युग में रासायनिक खादों के आने से भले ही उपज में बढ़ोतरी हुई है लेकिन कुछ सालों के बाद इसके लगातार प्रयोग से उपज बढ़ने के स्थान पर घटी है। जिसका मुख्य कारण है मिट्टी में जैविक पदार्थों का कम होना, इससे मिटटी की ऑर्गनिक शक्ति भी कम होती है और मिट्टी की संरचना भी बिगड़ती है। मिट्टी में जैविक शक्ति के रूप में फफूंदी, शैबाल, सूक्ष्म जीवाणु तथा केंचुए जैसे प्राणी पलते हैं। यह सब मिलकर मिट्टी में पोषक तत्वों को बढ़ाते हैं और मिट्टी को उपजाउ बनाए रखते हैं।

जैविक खेती अपनाने के लिए जरूरी बातें

- रसासनों का प्रयोग पूर्णतः प्रतिबन्धित करें।
- पशुओं का रख-रखाव सही ढंग से करें ।
- फसलों को बदल बदल कर खेतों में लगायें।
- सहभागी फसलें लगायें।
- स्थानीय वस्तुओं का प्रयोग करें।
- कृषि में उधान ,पशुपालन, महिला वर्ग की सहभागिता।
- भण्डारण व व्यापार में पारदर्शक गतिविधियां।

इन कार्यो की संयुक्त गतिविधियों को जैविक खेती माना जाता है ।

जैविक कृषि अपनाने के लाभ -

- परम्परागत रूप से उपलब्ध कृषि अवशेषों, पत्तों गोबर, इत्यादि में पोषक तत्वों का संतुलित विधियों से सुधार।
- पौधों को पूर्णतया सड़ी खाद उपलब्ध।
- पूर्ण रूप से सड़ी खाद का प्रयोग करने से, अपूर्ण रूप से सड़ी कम्पोस्ट के प्रयोग करने से उत्पन्न होने वाली अनेकों प्रकार की बीमारियों व कीटों से खेत बचे रहते हैं।
- पूर्ण रूप से सड़ी खादें हल्की होती हैं और उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना सुविधाजनक है ।
- कृषि अवशेष व गोबर जैसे अनमोल प्राकृतिक स्त्रोतों का सही प्रकार से उचित प्रबन्धन होता है ।
- पोषक तत्वों की बढ़ी हुई मात्रा से पारम्परिक फसलों, फल व सब्जियों की अधिक पैदावार मिलती है ।
- नाईट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश के अलावा अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों को कम व्यय में खेत तक पहुंचाया जा सकता है।
- कम्पोस्ट खाद का निर्माण करते समय विभिन्न पदार्थ जैसे हड्डी का चूरा, हरा पदार्थ इत्यादि मिलाने से पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ जाती है ।

जैविक कृषि के अन्तर्गत क्या करें-

- मुख्य एंव सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी-अधिकता को जानने के लिए मिट्टी परीक्षण करायें।
- कृषकों द्वारा जैविक अवशेष तथा बायो एजेंट के प्रयोग से निर्मित ऑर्गनिक खादों, कीटनाशी एंव फफूंदनाशी का प्रयोग करें ।
- केंचुए की खाद का अधिकाधिक प्रयोग करें ।
- जैव उर्वरकों राइजोबियम, ऐजेटोवेक्टर, ऐजोस्पाइरिलम, पी.एस.बी. आदि का प्रयोग करें ।
- रासायनिक तत्वों से मुक्त जल से फसलों की सिंचाई करें।
- वैज्ञानिक फसल चक्र को अपनाएं।
- फसल चक्र में दलहनी फसलों का इस्तेमाल अनिवार्य रूप से करें।
- फसलों/फल, वृक्षों की उचित प्रजातियों के जैविक बीज/पौधों का प्रयोग करें।
- बीजों को बुआई से पूर्व अनिवार्य रूप से जैविक तकनीकों द्वारा उपचारित करके ही बुआई करें।

- खरपतवार नियन्त्रण हेतु समय पर निराई-गुड़ाई व बुआई करके सही तकनीक का चयन करें।
- नाईट्रोजन बनाने वाले पौधों के रोपण को बढावा दें।
- उत्पादन को परम्परागत जैविक विधि से भण्डारित करें।

क्या न करें

- रासायनिक उर्वरकों व अन्य रसायनों का प्रयोग न करें।
- फसल अवशेष आदि को खेतों में न जलाएं।
- कारखानों के प्रदूषित जल से फसलों की सिंचाई न करें ।
- खेतों की कम से कम जुताई करें।
- पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले किसी भी तरीके को न अपनाये।
- खेती के लिए लाभदायक कीटों को क्षति न पहुंचाये।
- एक ही खेत में प्रति वर्ष एक ही फसल न उगाये।

पशुपालन के अन्तर्गत क्या करें

- पशुओं से मानवता पूर्ण व्यवहार करें।
- पशुओं को स्वच्छ ऑर्गनिक चारा एंव दाना खाने को दें।
- पशुओं से उनकी क्षमता के अनुसार निर्धारित मापदण्ड के अन्तर्गत ही कार्य लें।
- चारा फसलें, घास तथा चारा पौधों के रोपण/उत्पादन को बढ़ावा दें।
- स्थानीय प्रजातियों को बढ़ावा दें।

क्या न करें

- पशुओं को दूध निकलने हेतु प्रयुक्त किये जाने वाले इन्जेक्शन न लगाएं।
- बीमार/घायल पशुओं से कार्य न लें।
- वृद्ध एवं बांझ पशुओं के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार न करें ।

गौशाला की सफाई के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले पदार्थ

- पोटाशियम व सोडियम साबुन
- पानी व भाप
- चूना
- बिना बुझा चूना
- सोडियम हाईपोक्लोराइड
- कॉस्टिक पोटॉश
- फार्मलडिहाइड
- हाईड्रोजन परऑक्साइड
- नाइट्रिक एसिड

वन सम्पदा के अन्तर्गत क्या करें

- सामाजिक वानिकी को प्रोत्साहन दें।
- जल एंव भूमि संरक्षण तरीकों को अपनाएं।
- जंगलों को आग से बचायें।
- जंगलों में रहने वाले जानवरों का संरक्षण करें।
- सिल्वीपाश्चर सिस्टम को बढ़ावा दें।
- आवश्यकतानुसार रोटेशनल ग्रेजिंग करायें।

क्या न करें

- वृक्षों की कटाई न करें।
- पशुओं को अत्याधिक न चराऐं ।
- जंगलों में आग न लगाएं।
- जंगलों में रहने वाले जीव-जन्तुओं को क्षति न पहुँचायें।
- पर्यावरण को प्रदूषित न करें ।

□□□

वर्मीकम्पोस्ट - किसानो की समृद्धि का आधार

दिनेश जीनगर, शिवाधार, आभा पाराशर[1] एवं श्वेता गुप्ता[1]
सस्य विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
[1]राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान, दुर्गापूरा, जयपुर

भारतीय कृषि रसायनिक उर्वरकों पर अत्याधिक निर्भर है। जिनके अन्धाधुन्ध प्रयोग से मृदा की रसायनिक, भौतिक तथा जैविक संरचना तो बिगड़ ही रही है साथ ही कृषि उत्पादन में भी एक ठहराव सा आ गया है। फसलों की प्रतिरोधक क्षमता बीमारियों और कीटों के प्रति कम होती जा रही है जिनकी रोकथाम के लिए किसानो को विभिन्न प्रकार के कृषि रसायनों पर बहुत अधिक व्यय करना पड़ता है। इन रसायनों के अपेक्षित परिणाम प्राप्त नही हो रहे हैं इसके साथ-साथ हमारे कृषि उत्पाद, जल और मिटी भी विषैली हो रही है। अत: भारतीय कृषि उत्पादन में पुन: टिकाऊपन लाने के लिए हमें जैविक कृषि पर अधिक ध्यान देना होगा। जैविक खेती में गोबर की खाद, कम्पोस्ट एवं केंचुओं की खाद की महत्वपूर्ण भूमिका है। केंचुआ फसल के अवशेष, गोबर, कूड़ा-कचरा, व्यर्थ शाक-सब्जिओं, घास-फूस, फल-फूल आदि का भक्षण तथा उत्सर्जन कर उत्कृष्ट कोटि की खाद बना देते हैं जिसे वर्मीकम्पोस्ट के नाम से जाना जाता है। अत: वर्मीकम्पोस्ट तकनीक से हम कृषि को अधिक टिकाऊ, सुदृढ़ एवं लाभकारी व्यवसाय बना सकते हैं जिससे हमारे कृषक भाई अधिक समृद्ध होगें।

वर्मीकम्पोस्टिंग में प्रयोग होने वाले पदार्थ

जैव-विघटनशील कार्बनिक पदार्थ जैसे फसलों के अवशेष, गोबर, कूड़ा-कचरा, व्यर्थ शाक-सब्जियाँ, घास-फूस, फल-फूल, संसाधित किये खाद्यान्नों का अवशेष, गन्ने की खोई, बायोगैस प्लांट की स्लरी आदि।

वर्मीकम्पोस्ट के लाभ

1. वर्मीकम्पोस्ट में गोबर की खाद एवं कम्पोस्ट की तुलना मे नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश तथा लाभकारी सूक्ष्म तत्व अधिक मात्रा में होते हैं।
2. केंचुओं द्वारा निर्मित कम्पोस्ट में सूक्ष्म जीव, एन्जाइम्स, विटामिन और वृद्धिवर्धक हारमोन्स प्रर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं।
3. वर्मीकम्पोस्ट सामान्य कम्पोस्टिंग प्रक्रिया से एक तिहाई समय में ही तैयार हो जाती है।
4. वर्मीकम्पोस्ट को मिट्टी में मिलाने से मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ती है, भूक्षरण कम होता है, जल धारण क्षमता में सुधार होता है, फसलों पर कीटों तथा बीमारियों का प्रकोप कम होता है। पौधों तथा मिट्टी के मित्र जीवों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होता तथा किसान भाइयों को रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशियों पर व्यय कम करना पड़ता है।
5. वर्मीकम्पोस्ट द्वारा सब प्रकार के जैव-विघटनशील कार्बनिक व्यर्थ पदार्थों को अपघटन से खाद बनाई जाती है। यह पदार्थ जला दिये जाते हैं या इधर-उधर डालने से प्रदूषण व स्वास्थय से संबंधित समस्याओं को जन्म देते हैं।

वर्मीकम्पोस्ट के लिए उपयोग में लाये जाने वाले केंचुओं की प्रजातियां

हमारे देश में मुख्यतया तीन प्रजातियां वर्मीकम्पोस्ट में प्रयोग की जाती है ।

- *आइसीनिया फेटिडा*
- *यूड्रिलस यूजीनिया*
- *पेरियानिक्स एक्सकेवेटस*

इनमें अधिकांशत: *आइसीनिया फेटिडा* का प्रयोग किया जा रहा है।

वर्मीकम्पोस्टिंग की विधि

1. वर्मीकम्पोस्टिंग किसी भी प्रकार के पात्र जैसे मिट्टी या चीनी के बर्तन, वाशबेसिन, लकड़ी के बक्से, सीमेन्ट के टैंक इत्यादि में किया जा सकता है। यह प्रक्रिया भूमि में गढे (पिट) बनाकर या क्यारी (वर्मीकम्पोस्टिंग बेड) में की जा सकती है।
2. गडढे या क्यारी की लंबाई उपलब्ध स्थान के अनुसार निर्धारित करें तथा चौड़ाई लगभग 1 मी. तक रखें।
3. प्रत्येक पिट या क्यारी में सबसे नीचे 4-5 सें. मी. की सतह रेत से बिछायें उसके ऊपर 9-10 सें. मी. गेहूँ या चावल का भूसा या किसी भी अन्य विघटनशील पदार्थ को बिछायें। इसके ऊपर 30 से 40 सें. मी., 10-15 दिन पुराना गोबर डाल दें । इसके बाद जिस भी वनस्पति (2 से 3 सें. मी.) व्यर्थ पदार्थ से आप कम्पोस्ट बनाना चाहते हैं उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर गोबर में मिलाकर (1:3 के अनुपात में) बिछा दें। यह देखा गया है कि यदि इन पदार्थों को 2 से 3 सप्ताह तक आंशिक रूप से गलाकर डालें तो कम्पोस्ट जल्दी तैयार होती है। इस सतह को आप 15 से 20 सें. मी. तक ऊंचा रख सकते हैं । अब इस पर एक हजार केंचुए एक घन वर्गमीटर की दर से डाल दें तथा इसे बोरी या टाट से ढ़क दें।
4. इन बोरियों पर आवश्यकतानुसार पानी छिड़कते रहे। नमी लगभग 40-60 प्रतिशत तक रहनी चाहिए।
5. वर्मीकम्पोस्ट 2-3 माह में तैयार हो जाती है। यह देखने में उबली हुई चाय की पत्ती जैसी मालूम होती है।
6. जब कम्पोस्ट तैयार हो जाए तो गढ्ढे या क्यारी में 3-4 दिन तक पानी न छिड़कें जिससे केंचुए नीचे चले जाएगें। एक लकड़ी की फट्टी से ऊपरी सतह को छोटे-छोटे ढेर बना दें। इनको सूखने पर एकत्र कर दें। यह प्रक्रिया बार-बार दोहरायें।
7. कम्पोस्ट को छाया में सुखाकर 2.5 मि.मी. की छलनी से छानकर पोलीथीन या एच.डी.पी. के बोरों में भर दें।
8. यह पाया गया है कि सामान्य अवस्था में एक वर्गमीटर क्षेत्र से लगभग 100 कि.ग्रा. वर्मीकम्पोस्ट 2 से 3 माह में प्राप्त होती है जो कि डाले गये कच्चे माल का लगभग 60 प्रतिशत होती है।

ध्यान रखने योग्य बातें

1. व्यर्थ पदार्थो को आंशिक रूप से सड़ाने के बाद ही उपयोग करें। इससे कम्पोस्टिंग क्रिया तीव्र हो जाती है।
2. खाद्यान्न फसलों में वर्मीकम्पोस्ट पांच टन प्रति हेक्टेयर एवं सब्जी वाली फसलों में 10-12 टन प्रति हेक्टेयर की दर उपयोग करें।
3. फलदार वृक्षों में 1-10 कि.ग्रा. आवश्यकतानुसार तने के चारों ओर घेरा/थाला बनाकर प्रयोग करें।
4. गमलों में 100 ग्रा. प्रति गमले की दर से उपयोग करें।

उपरोक्त विधि से बनाई गई वर्मी कम्पोस्ट में साधारणतय: निम्नलिखित पोषक तत्व पाये जाते हैं।

वर्मीकम्पोस्ट में पोषक तत्वों की मात्रा

पोषक तत्व	मात्रा
नत्रजन	- 0.5-1.15%
फास्फोरस	- 0.1-0.3%

जैविक कार्बन – 9.15–17.98%

सोडियम – 0.06–0.3%

ताँबा – 2.0–9.5 पी.पी.एम.

लोहा – 2.0–9.3 पी.पी.एम.

जस्ता – 5.7–11.5 पी.पी.एम.

सल्फर – 128–548 पी.पी.एम. (काले, 1993 के सौजन्य से)

वर्मीकम्पोस्ट बनाने के आर्थिक विश्लेषण करने से ज्ञात हुआ है कि प्रथम 90 दिन तक इससे लाभ कम होता है लेकिन उसके बाद लाभ बहुत तेज से बढ़ता है (तालिका 1) तथा एक रू. लागत पर शहरी क्षेत्रों के आस पास लगभग 5 रू. की शुद्ध आय प्राप्त होती है। उपरोक्त विधि से बनाई गई वर्मीकम्पोस्ट से हमारे किसान भाई फसल अवशेष तथा अन्य अवशिष्टों का उपयोग करके फसलों के लिए एक अच्छी खाद तैयार कर सकते हैं तथा हमारे वातावरण को भी साफ–सुथरा बनाने में सहायक हो सकते हैं। इससे फसलों की उपज, वृद्धि तथा गुणवत्ता में सुधार होगा और हमारे कृषक बन्धु समृद्धि की ओर अग्रसर होगें।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने का आर्थिक विवरण प्रति मैट्रीक टन

सामग्री	अनुमानित लागत (₹)	
	प्रथम चक्र (90 दिन)	दूसरे तथा बाद के चक्र (45 दिन)
• फसल अवशेष / गोबर	3580	955
• कुल पारिश्रमिक : बेड की तैयारी, गाय के गोबर, केंचुए और अन्य सामग्री रखने और पानी का छिड़काव, खाद की पलटाई, मिलाना, छानना, भंडारण इत्यादि।	2100	1500
• कुल लागत	5680	2455
• अंतिम उत्पाद (केंचुए की खाद)	10000	10000
• केंचुए बेचने से प्राप्त आय	2500	5000
• कुल आय	12500	15000
• शुद्ध आय	6820	12545
• लाभ और लागत का अनुपात	2:1	5:1

□□□

छायादार नेट हाउस द्वारा बीज रहित खीरे का उत्पादन

मुकुल नैन[1], प्रदीप कुमार दिवेदी[1], स्वप्नील दुबे[1], राजेश सिंह[2] एवं विमल चौधरी[3]

कृषि विज्ञान केन्द्र, रायसेन, मध्य प्रदेश

एटीक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

मेनाद विश्वविद्यालय, हापुड, उत्तर प्रदेश

खीरा एक महत्वपूर्ण व्यवसायिक एवं मूल्यवर्धक फसल है जिसकी खेती पॉलीहाउस तकनीकी से वर्ष भर की जा सकती है लेकिन जिन क्षेत्रों में गर्मी का कार्यकाल लम्बे समय तक रहता हो उन क्षेत्रों में छायादार जाली का प्रयोग कर बीज रहित खीरे का अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है। यह तकनीक शहरों एवं बाजारों के पास बसे गाँवों के किसानों हेतु बहुत ही लाभकारी है।क्योंकि शहर के नजदीक होने के कारण किसान को इसका अच्छा मूल्य प्राप्त हो सकता है। वैसे भी यह फसल गर्मियों के मौसम की है लेकिन इसके फलों की माँग बाजार में हमेशा होती है, इसलिए यदि इसे छायादार जाली तकनीक के द्वारा उगाया जाय तो वर्ष में दो बार इसके उत्पादन को लें सकते है। पॉलीहाउस में खीरा को एक वर्ष में तीन बार उगाया जा सकता है।

सारणी 1. छायादार जाली में खीरा उत्पादन का फसल चक्र

फसल समय चक्र	मैदानी क्षेत्रों हेतु
पहली फसल	15 अगस्त से 30 नवम्बर
दूसरी फसल	1 फरवरी से 15 मई

छायादार जाली में भूमि की तैयारी

छायादार जाली में 10-15 सेंटीमीटर ऊँची लम्बी क्यारियां बना लें और उसको अच्छी तरह से समतल कर लें उसके बाद 5 किलोग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से गोबर कम्पोस्ट खाद या वर्मीकम्पोस्ट खाद को फैलाकर 2 चम्मच प्रति लीटर पानी में फार्मेलडिहाइड या दो चम्मच बावस्टीन 1 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करके मिट्टी में अच्छी तरह से मिला कर पुनः पारदर्शी पालीथीन से 2 सप्ताह के लिए ढ़क दें। इस तरह खेत की मिट्टी में होने वाली कमियां दूर हो जाती हैं और पूरे फसल समय तक खीरे का अच्छा उत्पादन होता है।

जलवायु

खीरे की खेती के लिए रात मे 16-18 डिग्री. सेन्टीग्रेड तथा दिन में 20-30 डिग्री. सेन्टीग्रेड तापक्रम एवं 60-80 भूमि एवं वातावरण की आर्द्रता की आवश्यकता होती है। लेकिन छायादार जाली खेती को अपनाने के बाद फसलें बाहर की अपेक्षा लम्बी अवधि तक उपलब्ध रहती है।

प्रजातियों का चुनाव

खीरे की खेती के लिए प्रजातियों का चुनाव एक अहम भूमिका निभाता है अन्यथा सही प्रजातियां यदि नही लगीं तो नुकसान होने की सम्भावना बनी रहती है। ऐसी प्रजातियों का चुनाव करें जो गाइनोसियस प्रकृति की हो व बीज रहित हो। ऐसी प्रजाति का चयन छायादार जाली हेतु खेती के लिए अच्छा पाया गया है जिसके नाम नीचे दर्शाए गए हैं।

छायादार जाली हेतु खीरे की गाईनोसियस प्रजातियां (अग्रेंजी खीरा)

खीरे की गाईनेसियस प्रजातियों में सैटिस, कीयान, हिल्टन, अविवा, आशमा, मल्टी स्टार, आलमीर, एन. एस.-9729, खीरा-2833, प्रिया, माधुरी आदि है।

खीरा बीज मूल्य

संकर एवं ग्राइनोसियस बीजरहित खीरे का मूल्य बाजार में बहुत ही अधिक है जो कि औसतन ₹ 4-7 प्रति बीज की दर से बेचा जाता है।

छायादार जाली हेतु खीरे की बीज दर

खीरे का बीज 6 बीज प्रति वर्ग मीटर लगता है। छायादार जाली में औसतन 4000-4500 बीज प्रति 1000 वर्ग मीटर प्रति फसल की दर से आवश्यकता होती है। अर्थात यदि हम 1000 वर्ग मीटर की दोनो फसल हेतु बीजों की संख्या की गणना करें तो कुल 8000 से 9000 बीजों की आवष्यकता होगी।

रोपण एवं बिजाई दूरी

पॉलीहाउस में खीरा 30 सेमी. वाले ड्रिप लेटरल पर लगता है यदि ड्रिप लाइन नहीं भी लगता है तो खीरे के पौध एवं बीजों की आपसी दूरी 30 सेमी. एवं कतार से कतार की दूरी 50 सेमी. रखी जाती है।

रोपण या बिजाई का समयः जैसा की प्रारम्भ में ही पृष्ठ 1 पर दर्शाया गया है।

छायादार जाली मेंखीरा की कटाई-छँटाई एवं सहारा प्रबन्धन

खीरा की कटाई-छँटाई एवं सहारा प्रबन्धन में खीरा की फसल के शाखाओं की कटाई-छँटाई करना बहुत ही आवश्यक होता है। जब खीरे की फसल 15-20 दिन की हो जाए तो उसके मुख्य तने पर उत्पन्न सभी शाखाओं को काट कर हटाते जाते हैं और मुख्य तने को रस्सी द्वारा उसकी निचले हिस्से में बांध कर तना को लपेटते हुए उपर छत की दिशा में ले जाकर बांध दिया जाता है। कभी-कभी मुख्य तना से निकली दो शाखाओं को एक साथ उपर चढ़ा देते हैं या प्रत्येक शाखाओं को 1-2 गाँठ छोड़ कर आगे से काट देते हैं। पॉलीहाउस में खीरा की खेती बिना सहारा एवं कटाई-छटाई के नही करते हैं अन्यथा अच्छी एवं अधिक उपज नही प्राप्त की जा सकती है।

कटाई-छंटाई करते समय आवश्यक सावधानियां

- मुख्य तने से शाखाओं में प्रथम गांठ के आगे से काटते रहना चाहिए अन्यथा मोटी होने पर काटने से मुख्य तना एवं पोषक तत्वों को नुकसान पहुंच सकता है।
- प्लास्टिक रस्सी, पालीथीन टेप, सुतली की रस्सी का ही प्रयोग पौधे को लपेटने के लिए करें। उपर रस्सी बांधने के लिए ऐसे जी.आई. तार को बांधे जिसमें पौधों के वजन को रोकने की क्षमता हो।
- रस्सी लपेटते समय यह ध्यान देना चाहिए कि मुख्य तने एवं कटी शाखाओं पर निकले हुए फूल और पौधे के उपरी हिस्से टूटने न पाये क्योंकि यह दोनो कोमल होती है अन्यथा उपज में भारी कमी हो जाएगी।
- निराई-गुड़ाई करते समय जड़ों के पास बांधी हुई तने की रस्सी न कटने पाए अन्यथा पौधा गिर जाएगा। जिससे उसमें लगने वाले फूल-फल गिर कर खराब हो जाएगे।
- रस्सी लपेटते समय फूल रस्सी के नीचे न दबें नहीं तो फल टूट जाएगा या फल की गुणवत्ता खराब हो जाती है।

सिंचाई प्रबन्धन

संरक्षित संरचनाओं में खेती करने के लिए टपक सिंचाई एक आवश्यक घटक है। गर्मियों में एक दिन के अंतराल से तथा सर्दी के दिनों में 3-4 दिनों के अंतराल से सिंचाई करने की आवश्यकता पड़ती है।इससे घुलनशील

उर्वरक एवं पानी दोनों को एक साथ दिया जा सकता है। ध्यान रहे कि प्रारम्भ में पौधों को पानी की कम मात्रा दें अन्यथा कमर तोड़ (डेम्पींग ऑफ) बिमारी लगने की सम्भावना बढ़ जाती है।

खाद एवं उर्वरक प्रबन्धन

खेतों की तैयारी के पूर्व 8-10 किलोग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से गोबर खाद, केचुएं की खाद, पत्ती की खाद आदि को मिला कर दें। पुनः उसी के साथ 100 ग्राम. यूरिया, 200 ग्राम सिंगल सुपर फास्फेट, 50 ग्राम पोटाश, 100 ग्राम नीमखली एवं 1-2 चम्मच ट्राईकोडर्मा या बावस्टीन नामक फफूँदीनाशी दवा को मिलाकर एक सप्ताह के लिए छोड़ दें। उसके बाद रोपण करें या बीज लगायें। टपक सिंचाई की सुविधा है तो पोषक तत्वों को टैंक में मिला कर दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त 19:19:19 या 20:20:20 या युरिया फास्फेट, नामक जलघुलनशील पोषक तत्वों को 1 ग्राम प्रति 4 लीटर पानी की दर फर्टीगेशन द्वारा दे सकते हैं। फर्टीगेशन क्रिया को फसल अवधि में सप्ताह में 1 बार अवश्य देते रहते हैं।

पौध लगाने का ढंग

बीज से पौध बनाकर रोपण विधि से लगाते हैं। खीरे की पौध बनाने हेतु प्लास्टिक ट्रे जिसको प्रो ट्रे या नर्सरी ट्रे के नाम से जानते हैं या पॉलीथीन की छोटी-छोटी थैलियों के द्वारा लगाते हैं। प्रो ट्रे में कोकोपीट, वर्मीकुलाइट एवं परलाइट नामक माध्यम का 3:1:1 के अनुपात में मिश्रण बनाकर बीजों को लगाते हैं। तथा पॉलीथीन बैग में कम्पोस्ट खाद, बालू एवं मिट्टी 2:1:1 के अनुपात से मिलाकर नर्सरी तैयार करते हैं। पौध उगने के बाद समय-समय पर पानी, उर्वरक एवं दवा देते रहते हैं और खीरे की नर्सरी पौध पॉलीहाउस के अन्दर 20-25 दिन में रोपण योग्य तैयार हो जाती है।

खीरे के फलों की तुड़ाई एवं उपज

जब फलों का आकार 15-20 सेंटीमीटर लम्बा एवं वजन 200-300 ग्राम का हो जाय तो फलों को तोड़ लेना चाहिए। फलों को तेज धार वाले चाकू या कैंची से काटें अन्यथा खीचकर तोड़ने से पौधे के टूटने का डर रहता है। तुड़ाई के बाद फलों को वजन एवं समान आकार के अनुसार दो ग्रेड में बॉट लेते हैं। समान वजन व आकार के फलों को 'ए' ग्रेड में तथा अन्य फलों को 'बी' ग्रेड में रखें जिससे बाजार में अच्छा पैसा मिल जाएगा। खीरों के फलों की उपज प्रति फसल औसतन 40-45 कुंटल प्रति 1000 वर्ग मीटर से मिल सकती है जिसमें से 20-25 प्रतिशत खीरा बी. ग्रेड का होता है तथा 75 से 80 प्रतिशत खीरा 'ए' ग्रेड का प्राप्त होता है। अर्थात यदि पूरे वर्ष किसान तीन बार खीरे की खेती करता है तो पूरे वर्ष भर में उसे औसतन खीरे के फलों की कुल उपज 80-90 कुण्टल प्रति हजार वर्ग मीटर से प्राप्त हो सकती है।

छायादार जाली खेती पर लागत एवं लाभ

छायादार जाली के अर्न्तगत वर्ष भर खीरे की खेती से निकला औसतन 80-90 कुण्टल कुल उपज को यदि रूपये 30 प्रति किलोग्राम की दर से बेचे तो कुल औसतन मूल्य ₹ 2,40,000 से 2,70,000 लाख रूपये प्राप्त हो जाता हैं। जिसमें से यदि आप सामान्यतः 50 प्रतिशत के लगभग सम्पूर्ण खर्च को लिकाल दे या घटा दें तो ₹ 1,20,000 से ₹ 1,35,000 तक कम से कम शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

भण्डारण

पॉलीहाउस खीरे के फलों की तुड़ाई करने के बाद सामान्यतः 2-3 दिन तक घरेलू कमरों में रखकर बेचा जा सकता है। लेकिन यदि शीतलन गृहों की सहायता से इसे भण्डारित करें तो खीरा के फलों को लम्बें समय तक उनकी बाजार की गुणवत्ता बनाऐं रखते हैं।

छायादार जाली में रोग एवं कीट व्याधियां

रोग एवं कीट-व्याधिया का वर्णन आगे क्रमशः किया गया है।

आर्द्रपतन (डैम्पिग आफ)

इस रोग के कारण खीरे के पौधों की कमर सड़कर टूट जाती है जिसस पौधे अचानक सूख कर खत्म हा जाते हैं इसे कमर तोड़ बीमारी भी कहते हैं। यह बीज, भूमि एवं सिंचाई के पानी से होने वाली ज्यादा नमी एवं वातावरण में दिनों तक बदली छाये रहने से खीरे के शिशु पौधों में लगती हैं जिसका नियंत्रण हम इस प्रकार से कर सकते हैं।

- बावस्टीन या थायरम या सेरेसान या ट्राइकोडरमा विरडी नामकदवा से बीजों का शोधन करके बोयें।
- रोपण पूर्व में भूमि का शोधन फार्मेलडिहाइड, नीमखली एवं बावस्टीन नामक दवा से करें।
- पौध जमने के बाद 1 चम्मच प्रति 2 लीटर पानी में बावस्टीन या डाइथेन एम-45 या कापरआक्सीक्लोराइड नामक दवा का 1-2 छिड़काव करें।
- सिंचाई हल्की करें।
- खरपतवार निकालते रहें।

पाउडरी मिल्ड्यू (चूर्णिल आसिता)

इसमें खीरे के पौधों की पत्तियों पर सफेद पाउडर की तरह चूर्ण बन जाता है जो पूरी पत्तियों पर फैलकर एक मोटी तह बना लेता हैं जिससे पत्तियों में पाया जाना वाला पर्णरन्ध (स्टोमेटा) बन्द हो जाता है और प्रकाश संश्लेषण क्रिया बाधित हो जाती है। जिससे पौधे भोजन नही बना पाते है तथा कुछ दिनों बाद पौधे एक-एक करके मर जाते है। इस रोग से बचाव हेतु विभिन्न विधियों को अपनाते हैं। जिसका वर्णन नीचे बिन्दुवार किया गया है।

- श्रोग जनित पत्तियों को तोड़ कर जला दें या गाड़ दें।
- अधिक सिंचाई बन्द कर दें।
- दिन में खिड़कियां खोलकर वातायन करें।
- डाइथेन एम-45 या रेडोमिल या ब्लाइटाक्स 50, केराथेन या सील्ड नामक फफूँदीनाशक दवाओंका 1-2 बार छिड़काव करें।
- छिड़काव 1 चम्मच प्रति 2 ली. पानी में घोलकर फसल के उपर करें।

खीरा मोजैक रोग

यह रोग संक्रमित बीजों को लगाने या सफेद मक्खी, माहू (एफिड) नामक कीट से फैलता है। यह रोग नर्सरी पौधों मे भी लग जाता है और वही से फिर रोपण के बाद भी लगताहै। इस रोग में पत्तियां पीली पड़ कर कुंज या कोड़ी हो जाती हैं और पौधों में फूल-फल आना बन्द हो जाता है। साधारण बोल-चाल में इस रोग को कुंज, कोड़िया या मड़ोरिया रोग भी कहते हैं। इसकी रोकथाम कैसे करें जिसका वर्णन नीचे बिन्दुवार किया गया है।

- बीमारी लगने वाले पौधे को दूसरे पौधे से बचाते हुए उखाड़ कर जला दें या जमीन में गाड़ दें।
- नर्सरी पौध उगाते समय यह ध्यान दे कि सफेद मक्खी, माहू और माईटस से ग्रसित पौधे को न लगायें।
- डायकोफाल, रोगर, राकेट, ओवरान, ओवेमाइट, नीमगोल्ड, आदि दवाओं का 1 चम्मच प्रति 2 लीटर पानी में मिलाकर 2-3 बार 15-15 दिन के अन्तराल पर फसल में छिड़काव करें।
- पीले एवं हरे रंगों वाला ट्रैप का उपयोग करें।

सूत्रकृमि (निमैटोड) रोग

यह भूमि के अन्दर पाये जाने वाला एक विशेष प्रकार का सूत्रकृमि होती है जो भूमि के अन्दर पायी जाती है। यह पौधों के लगाने के बाद या नर्सरी डालने के बाद उनकी जड़ों के अन्दर घुस जाता है और जड़ों को छोटी-छोटी गांठों के रूप में फुला देता है जिसके कारण जड़ें बीमार हो जाती हैं और पोषक तत्वों की उपलब्धता सुचारू रूप से कराने में असमर्थ हो जाती है। यह क्रिया निरन्तर चलती रहती है जिसके कारण पौधे

एक-एक करके उपर की तरु से नीचे की ओर सूखते रहते हैं और किसान को पता नहीं चलता है और अचानक पूरी फसल फलत अवस्था में नष्ट हो जाती है। यह बहुत खतरनाक रोग है क्योंकि यह एक बार जिस खेत में लगता है तो जल्दी समाप्त नहीं होता है और यदि ठीक ढ़ंग से भूमि उपचार नहीं हुआ तो यह धीरे-धीरे खेत में बढ़ता ही जाता है।

उपचारः इस रोग से बचाव हेतु सर्वप्रथम भूमि का शोधन मिथामसोडियम नामक दवा से करके क्यारियों को पारदर्षी पालीथीन से 10-15 दिन के लिए ढक कर सौरीकरण क्रिया करा देते हैं। जिससे पूर्व में स्थापित सूत्रकृमि मर जाते हैं और फसलें अच्छी होनी लगती हैं।

कीट

कीट जैसे सफेद मक्खी, रेड स्पाडर माइट्स, थ्रिप्स, माहू, कटुआ कीट, लीफमाइनर एवं दीमक आदि यह सभी कीड़े फसलों को बहुत ही नुकसान पहुंचाते हैं और इन्हीं के कारण से फसल में विषाणु रोग भी फैलता है।

रोकथामः कीटों की रोकथाम के लिए निम्न दवायें बाजार में उपलब्ध है। जैसे- रोगर, राकेट, ओवेरान, ओवेमाइट, क्लोरीपाइरीफॉस, कोरोजिन, डायकोफाल व अन्य रासायनिक दवाओं का एक चम्मच 2 लीटर पानी में घोलकर 2-3 बार छिड़काव करें तो लगने वाले कीट हमेशा के लिए नष्ट हो जाएगे।

दीमक कीट के रोकथाम के लिए नीमखली एवं क्लोरोपाइरीफॉस नामक दवा का उपयोग 1-2 चम्मच/लीटर की दर से घोल बनाकर जड़ों के बगल में या पौध रोपण के पूर्व खेत में डालें तो नियंत्रण किया जा सकता है। कीटों के आने के सांकेतांक नुक्से का प्रयोग जैसे पीले रंग वाला स्टेकी ट्रैप, फेरोमोन्स ट्रैप, प्रकाशप्रपंच (लाइटट्रैप) आदि का प्रयोग भी पॉलीहाउस के अन्दर कर सकते हैं।

छायादार जाली में खीरे की खेती करते समय आवश्यक निर्देश एवं सुझाव

पॉलीहाउस के अन्दर यदि जैविक खेती करना है तो रसायनों का प्रयोग न करके उनके जगह पर नीमउत्पाद, ट्राइकोडर्मा, एन.पी.बी., बी.टी. प्रीपरेसन, वर्मीकम्पोस्ट, बायोडायनमिक प्रीपरेसन, बायोफर्टीलाइजर, बायोपेस्टीसाइड एवं घरेलू नुक्सों का उपयोग कर सकते हैं। शेषजैविक खेती हेतु सभी कृषि प्रक्रिया पूर्व में लिखित विधियों के अनुसार होगी।

खेती के समय आवश्यक निर्देश

1. सफाई, खरपतवार निकास-गुड़ाई बराबर करें।
2. सूखी पत्तियों को तोड़ते रहें।
3. विषाणु जनित रोगी पौधों को उखाड़ कर जला दें।
4. कीटरोधी व फफूँदरोधी दवाओं का छिड़काव समय-समय पर करते रहें।
5. तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट का सेवन अन्दर न करें।
6. कटाई-छटाई एवं सहारा देने की क्रिया सप्ताह में एक बार अवश्य करते रहें।

□□□

टमाटर की वैज्ञानिक खेती

शशि मीना, रवि मीना, एवं रमेश चंद मीना
पादप कार्यिकी संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

सब्जी उत्पादन में भारत, चीन के बाद दूसरे नंबर पर आता है। सब्जियों में टमाटर (लाइकोपर्सिकन एस्कुलेन्टम) का प्रमुख स्थान है। इसके फलों को विभिन्न प्रकार से उपयोग में लिया जाता है। इसकी खेती वर्ष भर की जा सकती है। टमाटर में विटामिन ए सी की मात्रा अधिक होती है। इसका उपयोग ताजा फल के रूप में तथा उन्हें पकाकर, डिब्बाबंदी करके, अचार, चटनी, सूप, केचप, सॉस आदि बनाकर भी किया जाता है। टमाटर में लाल रंग लाइकोपीन नामक पदार्थ से होता है जिसे दुनिया का प्रमुख एन्टिऑक्सीडेन्ट माना गया है।

जलवायु एवं भूमि

टमाटर की अच्छी पैदावार में तापक्रम का बहुत बड़ा योगदान होता है। टमाटर की फसल के लिए आदर्श तापमान 20-25 सेन्टीग्रेड होता है। यदि तापमान 43 सेंटीग्रेड हो जाये तो फूल तथा अपरिपक्व फल गिरने लगते है और यदि तापमान 13 सेन्टीग्रेड से कम तथा 35 सेन्टीग्रेड से अधिक होने पर फल कम आते है। क्योंकी इस तापमान में पराग का अंकुरण बहुत कम होता है। जिससे फलों का स्वरूप भी बिगड़ जाता है।

यह मुख्यतया गर्मी की फसल है किन्तु अगर पाला न पड़े तो इसको वर्ष भर किसी भी समय उगाया जा सकता है। इसके लिए दोमट, जल निकास युक्त, भूमि सर्वोत्तम रहती है।

उन्नत किस्में

पूसा रूबी, पूसा अर्ली, ड्वार्फ पूसा 120, मारग्लोब, पंजाब छुआरा, सलेक्शन-120, पंत बहार, अर्का विकास, हिसार अरूणा, सलेक्शन- एम टी एच 6, एच एस 101, सी ओ 3, सलेक्शन-152, पंजाब केसरी, पंत टी-1, अर्का सौरभ, एस-32 डी, टी-10।

संकर किस्में

कर्नाटक हाइब्रिड, रश्मि, सोनाली, पूसा हाइब्रिड, पूसा हाइब्रिड 2, आर- टी- एच- 1 2 व 3, एच- ओ- ई- 606, एन ए 601, बी एस एस 20, अविनाश-2, एम टी एच-6।

नर्सरी तैयार करना

नर्सरी के लिए एक मीटर चौड़ी व 3 मीटर लम्बी, 10 से 15 सेमी ऊँची क्यारियाँ बनाई जानी चाहिए। बीजों की बुवाई से पूर्व 2 ग्राम केप्टान प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। गर्मी की फसल के लिए दिसम्बर-जनवरी में तथा सर्दी की फसल के लिए सितम्बर माह में बुवाई करें। एक हेक्टेयर में पौध रोपण हेतु 400 से 500 ग्राम बीज तथा संकर किस्मों के लिए 150 से 200 ग्राम बीज प्रति हैक्टेयर उपयुक्त रहती है। नर्सरी में पौद को कीड़ों के प्रकोप से बचाने के लिए मोनोक्रोटोफॉस 36 एस एल एक मिलीलीटर तथा साथ में जाइनेब या मेन्कोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करें। ड्रिप सिंचाई

सारणीः बीज बुआई व पौध रोपण का समय

क्षेत्र	बीज बुआई	रोपण
मैदानी भाग	शरद ऋतु (जुलाई-सितम्बर)	अगस्त-अक्टूबर
मैदानी भाग	बसन्त ग्रीष्म ऋतु (नवम्बर-दिसम्बर)	दिसम्बर-जनवरी
पहाड़ी भाग	मार्च-अप्रैल	अप्रैल-मई

विधि से अगर सिंचाई करनी हो तो पौद रोपण एक मीटर चौड़ी तथा 10-15 सेमी ऊँची क्यारी पर पौदो की रोपाई करनी चाहिए।

रोपण

जब पौधे 10 से 15 सेमी लम्बे (चार से पाँच सप्ताह के) हो जाएं तो, इनका रोपण खेत में कर देना चाहिए। पौध की रोपाई खेत में शाम के समय 75 × 75 से.मी. दूरी पर वर्षा ऋतु की फसल के लिए तथा 50 × 30 से 45 सेमी की दूरी पर गर्मी की फसल लिए करें। संकर किस्मों को खेत में 90 × 45 से.मी. की दूरी पर लगावें एवं बढ़वार के समय लाईन के ऊपर लोहे के तार पर सुतली की सहायता से सहारा (स्टेकिंग) देंवे।

खाद एवं उर्वरक

पौधों की रोपाई के एक माह पूर्व 150 क्विंटल सड़ी हुई तैयार गोबर की खाद खेत में डाल कर भली भाँति मिला देंवे। पौद लगाने से पूर्व 60 किलो नत्रजन, 80 किलो फॉस्फोरस एवं 60 किलो पोटाश प्रति हैक्टर के हिसाब से खेत में ऊर दे। पौधे लगाने के 30 दिन बाद 30 किलो नत्रजन की मात्रा खड़ी फसल में देकर सिंचाई करें। संकर किस्मों में 300 से 350 क्विंटल पूर्णतया सड़ी हुई गोबर की खाद, 180 किलो नत्रजन 120 किलो फॉस्फोरस एवं 80 किलो पोटाश प्रति हैक्टर की दर से देवें।

सिंचाई, निराई एवं गुड़ाई

सर्दी में 8 से 10 दिन व गर्मी में 6 दिन के अंतराल पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। बून्द-बून्द सिंचाई से 60-70 प्रतिशत पानी की बचत के साथ-साथ 20-25 प्रतिशत उत्पादन अधिक प्राप्त किया जा सकता है। पौद लगाने के 20 से 25 दिन बाद प्रथम निराई-गुड़ाई करें। आवश्यकतानुसार दुबारा निराई-गुड़ाई कर खेत को खरपतवार रहित रखना चाहिए।

फलों की तुड़ाई

टमाटर के फलों की तुड़ाई उसके उपयोग पर निर्भर करती है यदि टमाटर को पास के बाजार में बेचना है तो फल पकने के बाद तुड़ाई करें और यदि दूर के बाजार में भेजना हो तो जैसे ही पिस्टिल अन्त में रंग लाल हो जाये तो तुड़ाई आरम्भ कर सकते है।

भण्डारण

उत्पादक वैसे तो अपना टमाटर सीधे बाजार में बेच देते है, परन्तु कभी-कभी बाजार में मांग न होने से या बाजार भाव कम मिलने की स्थिति में परिपक्व हरे टमाटर को 12.5 सेन्टीग्रेड तापमान पर 30 दिनों तक तथा पके टमाटर को 4-5 सेन्टीग्रेड पर 10 दिन तक रखा जा सकता है भण्डारण के समय आर्द्रता 85-90 प्रतिशत होनी चाहिए।

कीट प्रबंधन

सफेद लट

यह टमाटर की फसल को काफी नुकसान पहुँचाता है। इसका आक्रमण जड़ पर होता है। इसके प्रकोप से पौधे मर जाते हैं। नियंत्रण हेतु फोरेट 10 जी या कार्बोफ्यूरान 3 जी 20-25 किलो प्रति हैक्टर की दर से रोपाई से पूर्व कतारों में पौधों के पास डालें।

कटवा लट

इस कीट की लटें रात्रि में भूमि से बाहर निकल कर छोटे-छोटे पौधों को सतह के बराबर से काटकर गिरा

देती हैं। दिन में मिट्टी के ढेलों के नीचे छिपी रहती हैं। नियंत्रण हेतु क्यूनॉलफॉस 1-5 प्रतिशत चूर्ण 20 से 25 किलो प्रति हैक्टर के हिसाब से भूमि में मिलावें।

सफेद मक्खी पर्णजीवी (थ्रिप्स हरा तेला व मोयला)

ये कीट पौधों की पत्तियों व कोमल शाखाओं का रस चूसकर कमजोर कर देते हैं। सफेद मक्खी टमाटर में विषाणु रोग फैलाती है। इनके प्रकोप से उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। नियंत्रण हेतु डाइमिथोएट 30 ई सी या मैलाथियॉन 50 ई सी एक मिलीलीटर का प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर यह छिड़काव 15 से 20 दिन बाद दोहरायें।

फल छेदक कीट

इस कीट की लटें फल में छेद करके अंदर से खाती हैं। कभी-कभी इनके प्रकोप से फल सड़ जाता है इससे उत्पादन में कमी के साथ-साथ फलों की गुणवत्ता भी कम हो जाती है। नियंत्रण हेतु क्यूनॉलफॉस एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

मूलग्रंथि सूत्रकृमि

भूमि में इस कीट की उपस्थिति के कारण टमाटर की जड़ों पर गांठें बन जाती हैं तथा पौधों की बढ़वार रूक जाती है एवं उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। नियंत्रण हेतु रोपाई से पूर्व 25 किलो कार्बोफ्युरान 3 जी प्रति हैक्टर की दर से भूमि में मिलायें।

झुलसा रोग

इस रोग से टमाटर के पौधों की पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। यह रोग दो प्रकार का होता है।

- **अगेती झुलसा:** इस रोग में धब्बों पर गोल छल्लेनुमा धारियां दिखाई देती हैं।
- **पछेती झुलसा:** इस रोग से पत्तियों पर जलीय, भूरे रंग के गोल से अनियमित आकार के धब्बे बनते हैं। जिसके कारण अन्त में पत्तियाँ पूर्ण रूप से झुलस जाती हैं।

पर्णकुंचन व मोजेक विषाणु रोग

पर्णकुंचन रोग में पौधों के पत्ते सिकुड़कर मुड़ जाते हैं तथा छोटे व झुर्रीयुक्त हो जाते हैं। मोजेक रोग के कारण पत्तियों पर गहरे व हल्का पीलापन लिये हुए धब्बे बन जाते हैं। इन रोगों को फैलाने में कीट सहायक होते हैं। नियंत्रण हेतु बुवाई से पूर्व कार्बोफ्यूरान 3 जी 8 से 10 ग्राम प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से भूमि में मिलावें। पौध रोपण के 15 से 20 दिन बाद डाइमिथोएट 30 ईसी एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। छिड़काव 15 से 20 दिन के अन्तर पर आवश्यकतानुसार दोहरायें। फूल आने के बाद उपरोक्त कीटनाशी दवाओं के स्थान पर मैलाथियान 50 ईसी एक मिलीलीटर प्रति लीटर के हिसाब से छिड़कें।

आर्द्र गलन

इस रोग के प्रकोप से पौधे का जमीन की सतह पर स्थित तने का भाग काला पड़ जाता है और नन्हे पौधे गिरकर मरने लगते हैं। यह रोग भूमि एवं बीज के माध्यम से फैलता है। नियंत्रण हेतु बीज को 3 ग्राम थाइरम या 3 ग्राम केप्टान प्रति किलो बीज की दर से उपचारित कर बोयें। नर्सरी में बुवाई से पूर्व थाइरम या केप्टान 4 से 5 ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से भूमि में मिलावें। नर्सरी आसपास की भूमि से 4 से 6 इंच उठी हुई बनायें।

नियंत्रण हेतु मैन्कोजेब 2 ग्राम या कॉपर ऑक्सी क्लोराइड 3 ग्राम या रिडोमिल एम जैड 3 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें।

तुड़ाई एवं उपज

सर्दी की फसल में फल दिसम्बर में तुड़ाई हेतु तैयार हो जाते हैं तथा फरवरी तक चलते रहते हैं। खरीफ की फसल के फल सितम्बर से नवम्बर तक व गर्मी की फसल के फल अप्रैल से जून तक उपलब्ध होते हैं। टमाटर की औसत उपज 200 से 500 क्विंटल प्रति हैक्टर तक होती हैं। संकर किस्मों से 500 से 700 क्विंटल प्रति हैक्टर तक उपज प्राप्त की जा सकती है।

□□□

कम खर्च मे अधिक लाभ के लिये सोयाबीन का जैविक बीज उत्पादन

विजेता खान एवं स्वाती नायक
पादप रोग संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

सामान्यत: सोयाबीन का खेत अच्छी तरह तैयार किया जाना चाहिए। खेतों में बहुत अधिक मिट्टी के ढेले नहीं होने चाहिए। खेत चौरस होना चाहिए एवं फसलों की जड़ों खूटिंयों से मुक्त होना चाहिये।

खेत की तैयारी

मिट्टी पलट हल के साथ एक गहरी जोत के बाद दो पाटा लगाया जाना चाहिए या स्थानीय हल से दो जोत पर्याप्त होता है। बिजाई के समय खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिये।

भूमि का चयन

सोयाबीन की खेती के लिए अधिक हल्की और पर्याप्त मात्रा में चिकनी मिट्टी दोनों ही भूमियाँ उपयुक्त नहीं होती हैं। इसे मध्यम प्रकार की मिट्टी में बोया जाना चाहिए। हल्की भूमियों में इसकी बहुत जल्द पकने वाली किस्में लें।

बुवाई का ढंग

बुवाई 45 से 60 से.मी. की दूरी पर पंक्तियों में की जानी चाहिए। इसके लिए सीड ड्रिल की सहायता ली जा सकती है या फिर हल के पीछे से बीज बोना चाहिए। एक पौधे से दूसरे पौधे की दूरी 4 से 5 से.मी. के बीच होनी चाहिये। पर्याप्त नमी की स्थिति में बीज को 3-4 सेन्टीमीटर से अधिक गहरे में नहीं डालना चाहिए। अगर बीज अधिक गहराई में चला जाता है तो बिजाई के बाद पपड़ी पड़ने की आशंका बढ़ जाती है। इससे अंकुरण में देरी हो सकती है तथा फसल की सघनता कम हो सकती है। अंकुरण प्रतिशत 80 है तो 70 से 80 किलो बीज प्रति हेक्टेयर लगता है। पिछेती एवं बसंत फसल के लिए 100 से 120 किलो प्रति हेक्टेयर बीज की जरूरत पड़ती है।

बीच उपचार

सोयाबीन में अभी भी अंकुरण के समय रोगों के नियंत्रण के लिए फफूँद रोग नाशक रसायन या जैविक नियंत्रण के लिए प्रोटेक्ट (*ट्राइकोडर्मा विरिडि*) का तथा नत्रजन स्थिरीकरण के लिए राइजोबियम कल्चर एवं स्फुर घोलक बैक्टीरिया का उपयोग बहुत ही कम किसानों द्वारा किया जा रहा है।

मौसम एवं फसल चक्र

सोयाबीन के मामले में बुवाई की अवधि काफी महत्वपूर्ण होती है। उत्तर भारत में सोयाबीन की बुवाई जून के तीसरे सप्ताह से जुलाई के पहले पखवाड़े तक की जा सकती है। उत्तर भारत में कुछ सामान्य फसल चक्र इस प्रकार है: सोयाबीन-गेहूं, सोयाबीन-आलू, सोयाबीन-चना, सोयाबीन- तम्बाकू, सोयाबीन-आलू-गेहूं

बीज खेत से खेत की दूरी - 3 मी.

किस्में

1. **जे. एस-335**

- अवधि मध्यम, 95-100 दिन
- उपज 25-30 क्विंटल/हेक्टेयर
- 100 दाने का वजन 10-13 ग्राम
- अद्‌र्ध-परिमित वृद्धि, बैंगनी फूल, रोंये रहित फलियां, जीवाणु झुलसा प्रतिरोधी।

2. जे.एस. 93-05

- अवधि अगेती, 90-95 दिन
- उपज 20-25 क्विंटल/हेक्टेयर
- 100 दाने का वजन 13 ग्राम से ज्यादा
- विशेषताएं: अद्‌र्ध-परिमित वृद्धि किस्म, बैंगनी फूल. कम चटकने वाली फलियां।

3. जे. एस. 95-60

- अवधि अगेती, 80-85 दिन
- उपज 20-25 क्विंटल/हेक्टेयर
- 100 दाने का वजन 13 ग्राम से ज्यादा
- विशेषताएं: अद्‌र्ध-बौनी किस्म, ऊचाई 45-50 सेमी, बैंगनी फूल, फलियां नहीं चटकती।

4. जे.एस. 97-52

- अवधि मध्यम, 100-110 दिन
- उपज 25-30 क्विंटल/हेक्टेयर
- 100 दाने का वजन 12-13 ग्राम
- विशेषताएं: सफेद फूल, पीला दाना, काली नाभी, रोग एवं कीट के प्रति सहनशील, अधिक नमी वाले क्षेत्रों के लिये उपयोगी।

5. जे.एस. 20-29

- अवधि मध्यम, 90-95 दिन
- उपज 25-30 क्विंटल/हेक्टेयर
- 100 दाने का वजन 13 ग्राम से ज्यादा
- विशेषताएं: बैंगनी फूल, पीला दाना, पीला विषाणु रोग, चारकोल राट, बेक्टेरियल पश्चूल एवं कीट प्रतिरोधी।

6. जे.एस. 20-34

- अवधि मध्यम, 87-88 दिन
- उपज 22-25 क्विंटल/हेक्टेयर
- 100 दाने का वजन 12-13 ग्राम
- विशेषताएं: बैंगनी फूल, पीला दाना, चारकोल राट, बेक्टेरियायल पश्चूल, पत्ती धब्बा एवं कीट प्रतिरोधी, कम वर्षा में उपयोगी

7. एन.आर.सी-7

- अवधि मध्यम, 90-99 दिन
- उपज 25-35 क्विंटल/हेक्टेयर
- 100 दाने का वजन 13 ग्राम से ज्यादा
- विशेषताएं: परिमित वृद्धि, फलियां चटकने के लिए प्रतिरोधी, बैंगनी फूल, गर्डल बीडल और तना-मक्खी के लिए सहनशील

8. एन.आर.सी-12

- अवधि मध्यम, 96-99 दिन
- उपज 25-30 क्विंटल/हेक्टेयर
- 100 दाने का वजन 13 ग्राम से ज्यादा
- विशेषताएं: परिमित वृद्धि, बैंगनी फूल, गर्डल बीटल और तना-मक्खी के लिए सहनशील, पीला मोजैक प्रतिरोधी

9. एन.आर.सी-86

- अवधि मध्यम, 90-95 दिन
- उपज 20-25 क्विंटल/हेक्टेयर
- 100 दाने का वजन 13 ग्राम से ज्यादा

- विशेषताएं: सफेद फूल, भूरा नाभी एवं रोये, परिमित वृद्धि, गर्डल बीटल और तना-मक्खी के लिये प्रतिरोधी, चारकोल राट एवं फली झुलसा के लिये मध्यम प्रतिरोधी

पौध संख्या

किसी भी फसल की कुल उपज में प्रत्येक पौधे का योगदान होता है। इसलिए हर एक पौधे के महत्व को समझते हुए फसल की कुल पौध संख्या प्रति हेक्टेयर निर्धारित की जाती है। पौध संख्या का निर्धारण फसल या उसकी किस्म के पौधे के फैलाव के आधार पर किया जाता है। इसके लिए विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में परीक्षण किए जाते हैं। सोयाबीन की कम फैलने वाली किस्मों की कतारों में 30 से 35 व अधिक फैलने व लंबी अवधि वाली किस्मों की कतारों के बीच 40 से 45 सेमी का अंतर रखा जाता है। एक ही कतार में पौधे से पौधे के बीच 10 से 12 सेमी की दूरी रखी जानी चाहिए। पौधों को अधिक घना रखने से पौधे के निचले भाग तक हवा व धूप नहीं पहुँच पाती है। इसी कारण कीड़े व रोग लगने की आशंका बढ़ जाती है। दूसरे, घने पौधों में नीचे की तरफ फलियाँ कम या नहीं लगती हैं।

सिंचाई

खरीफ सीजन के दौरान सोयाबीन फसल को सामान्यत: किसी सिंचाई की जरूरत नहीं पड़ती है। हालांकि यदि फलियां भरने की अवधि के दौरान सूखा हो तो सिंचाई की जा सकती है। भारी वर्षा के प्रभाव से फसल को बचाने के लिए पानी की निकासी की व्यवस्था भी काफी महत्वरपूर्ण है। वसंत कालीन फसल को 5 से 6 सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है।

खरपतरवार नियंत्रण

खरपतवार नियंत्रण के लिए डोरा या कोल्पा चलाया जाना, नींदानाशक रसायन के उपयोग से बेहतर है। क्योंकि इससे खेत में पलवार हो जाती है, जिससे सतह से नमी की हानि रुक जाती है। इसके अलावा मिट्टी में वायु संचरण भी अच्छा हो जाता है, जो जड़ों के विकास, वृद्धि व पोषक तत्वों के शोषण के लिए महत्वपूर्ण है।

कीट रोग नियंत्रण के उपाय

हर साल मौसम के अनुसार अलग-अलग कीड़े या रोग और उनके प्रकोप की तीव्रता होती है।

1. कृषि कार्य द्वारा: गर्मी में खेत की गहरी जुताई करें
2. शुद्ध अरहर न बोयें
3. फसल चक्र अपनाये
4. क्षेत्र में एक ही समय बोनी करना चाहिये
5. प्रकाश प्रपंच लगाना चाहिये
6. फेरोमेन टेप्स लगाये
7. पौधों को हिलाकर इल्लियों को गिरायें एवं उनकों इकट्ठा करके नष्ट करें
8. खेत में चिड़ियों के बैठने के लिए अंग्रेजी शब्द ''टी'' के आकार की खुटिया लगायें।
9. जैविक नियंत्रण द्वारा: एन.पी.वी.500 एल.ई./हे. + यू.वी. रिटारडेन्ट 0.1 प्रतिशत + गुड 0.5 प्रतिशत मिश्रण का शाम के समय छिड़काव करें। बेसिलस थूरेंजियन्सीस 1 किलोग्राम प्रति हेक्टर + टिनोपाल 0.1 प्रतिशत + गुड़ 0.5 प्रतिशत का छिड़काव करे।
10. जैव-पौध पदार्थों के छिड़काव द्वारा: निंबोली सत 5 प्रतिशत का छिड़काव करें, नीम तेल या करंज तेल 10-15 मि.ली.+1 मि.ली. चिपचिपा पदार्थ (जैसे सेन्डोविट, टिपाल) प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

फसल की कटाई व प्रबंधन

जब सोयाबीन की फसल परिपक्व हो जाती है, पौधों से पत्तियां झड़ने लगती हैं। किस्मों के अनुरूप परिपक्वता अवधि 90 से 140 दिनों की होती है। जब पौधा परिपक्व हो जाता है, पत्तियां पीली पड़ जाती है एवं झड़ जाती हैं।

फिर फलियां सूखने लगती हैं। बीज से नमी की मात्रा तेजी से खत्म होती है। फसल की कटाई हाथ से की जा सकती है। हंसिया की सहायता से डंलों को काटा जा सकता है। थ्रेसिंग मशीन की सहायता से या परम्परागत विधि से की जा सकती है। थ्रेसिंग सावधानीपूर्वक करनी चाहिए। अगर डंठल पर जोर से प्रहार किया जाता है तो फली की ऊपरी परत चटक सकती है तथा इससे बीज की गुणवत्ता प्रभावित होती है, उसकी जीवन अवधि कम होती है। कुछ बदलाव के साथ गेहूं के लिए उपलब्ध थ्रेसर का उपयोग सोयाबीन थ्रेसिंग के लिए किया जा सकता है। इसके लिए थ्रेसिंग करने में बदलाव की जरूरत पड़ती है। पंखे की शक्ति बढ़ानी पड़ती है तथा सिलेंडर की गति को कम करना पड़ता है। थ्रेसर से थ्रेसिंग के दौरान 13 से 14 प्रतिशत नमी का होना आदर्श माना जाता है।

भंडारण

भंडारण से पहले बीजों को अच्छी तरह सूखाना चाहिए ताकि नमी का स्तर 11 से 12 प्रतिशत ही रह जाये।

उपज

जून के अंतिम सप्ताह में सोयाबीन की बुवाई से अधिकतम उत्पादकता प्राप्त होती है। 7 जुलाई के बाद बुवाई से प्रति हेक्टेयर उत्पादकता 40 किलो घट जाती है। यदि सभी तकनीकों, उन्नत किस्मों का चुनाव करके लगायें तो औसत उपज 30-35 क्वि. प्रति हेक्टर तक मिल जाती है। इसका उत्पादन 30-35 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक कई जगह लिया जा रहा है। उपज में इस भारी अंतर का कारण जानने के लिए अलग-अलग समय पर अलग-अलग स्थानों पर कुछ सर्वे किए गए।

लागत-लाभ अनुपात

क्रम संख्या	आर्थिक मापदंड	लागत (रू.)
1.	बीज मूल्य	2080
2.	खेत की तैयारी	1000
3.	बीज बुआई	750
4.	जैविक उरर्वक प्रबन्धन	807
5.	खरपतवार नियंत्रण/निराई	1141
6.	सिंचाई	600
7.	रोग प्रबन्धन	400
8.	बीज तुड़ाई, सफाई, झड़ाई	1891
9.	अन्य	1000
10.	कुल लागत* (₹/एकड़)	9669
आर्थिक विश्लेषण		
1.	बीज उपज (कि.ग्रा./एकड़)	800
2.	बीज मूल्य (₹/कि.ग्रा.)	70
3.	सकल प्रतिफल* (₹/एकड़) बीज उत्पादन से	56000
4.	चारा उपज (कि.ग्रा./एकड़)	400
5.	शुद्ध प्रतिफल (₹/एकड़) चार से	1200
6.	वृद्धिशील प्रतिफल (₹/एकड़)	57200
7.	उत्पादन की लागत (प्रति क्विंटल)	1209

□□□

धान-गेहूं फसल प्रणाली में संरक्षण खेती अपनाकर करें फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन

शांति देवी बम्बोरिया[1], सुमित्रा देवी बम्बोरिया[2], जितेंद्र सिंह बम्बोरिया[3] व आर.एस. बाना[4]

[1,4]सस्य विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110 012

[2]महाराणा प्रताप राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, उदयपुर-313 001, राजस्थान

[3]श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, जयपुर-303 329, राजस्थान

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में धान तथा गेहूं प्रमुख फसलें हैं। भारतवर्ष में धान-गेहूं फसल प्रणाली लगभग 10.5 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्रफल पर अपनाई जाती है। जिसका 90 प्रतिशत क्षेत्रफल सिन्धु-गंगा मैदानी क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। हरित क्रान्ति के पश्चात् उन्नत किस्मों, सिंचाई व उर्वरक प्रबंधन के कारण इन दोनों फसलों के दाने व फसल अवशेष उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई है। भारत में प्रतिवर्ष 600 से 700 मिलियन टन फसल अवशेष उत्पादित होता है जिसका एक-चौथाई भाग इन्हीं दोनों फसलों से प्राप्त होता है, परन्तु किसानों को इन फसल अवशेषों का महत्व ज्ञात न होने के कारण वे इनका उचित तरीके से उपयोग नहीं करते।

फसल अवशेष बहुत ही महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन हैं। ये न केवल मृदा कार्बनिक पदार्थ का महत्वपूर्ण स्रोत हैं, अपितु मृदा के जैविक, भौतिक एवं रासायनिक गुणों में वृद्धि भी करते हैं। पादप द्वारा मृदा से अवशोषित 25 प्रतिशत नत्रजन व फास्फोरस, 50 प्रतिशत गन्धक एवं 75 प्रतिशत पोटाश जड़, तना व पत्ती में संग्रहित रहते है। अत: फसल अवशेष पादप पोषक तत्वों का भण्डार है। यदि इन फसल अवशेषो को पुन: उसी खेत में डाल दिया जाये तो मृदा की उर्वरकता में वृद्धि होगी और फसल उत्पादन लागत में भी कमी आयेगी।

मृदा से पोषक तत्व अवशोषण एवं रासायनिक उर्वरकों द्वारा पोषक तत्व आपूर्ति में काफी असन्तुलन होने के कारण मृदा की उर्वरा शक्ति दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही हैं। धान-गेहूँ फसल प्रणाली 10 टन/हैक्टेयर जैवभार उत्पादन हेतु लगभग 500 किलोग्राम पोषक तत्वों को मृदा से अवशोषित करती हैं। अत: फसल अवशेषो का मल्च के रूप में प्रबन्धन की अति आवश्यकता हैं।

फसल अवशेष दहन: विगत कुछ वर्षों में कृषि क्षेत्र में कई उन्नत तकनीकियां विकसित की गयी हैं, उन्ही में से एक हैं- मशीनीकरण, जिसका उद्देश्य श्रमिक अभाव की समस्या को दूर करना व समय की बचत करना था। वर्तमान में पंजाब तथा हरियाणा राज्यों में कम्बाईन मशीन द्वारा धान की कटाई 75 प्रतिशत धान के खेतों में की जाती है जिससे धान के फसल अवशेष खेत में बिखर जाते हैं और किसान उन्हें खेत में ही जला देते हैं। प्रतिवर्ष अक्टूबर व नवम्बर माह में लगभग 3 सप्ताह तक फसल अवशेषों का व्यापक स्तर पर दहन किया जाता है।

फसल अवशेष दहन के दुष्परिणाम

1. मृदा संघटन का महत्वपूर्ण घटक मृदा कार्बनिक पदार्थ है। फसल अवशेष दहन से ये अमूल्य पदार्थ नष्ट होते जा रहे हैं, जिसके कारण मृदा स्वास्थ्य व मृदा उत्पादकता खतरे में है।

सारणी 1: धान एवं गेहूं के फसल अवशेषों की भारत में उपलब्धता एवं उनमें पोषक तत्वों का स्तर

राज्य	फसल अवशेष उपलब्धता			पुनर्चक्रण के लिए	पोषक तत्व (N + P + K) सामर्थ्य		
	धान	गेहूं	कुल	फसल अवशेष	कुल	सापेक्ष पुनर्चक्रण	रसायनिक उर्वरक
				उपलब्धता		के लिए उपलब्ध	प्रतिस्थापन मान
पंजाब	10.0	18.2	28.2	9.40	0.462	0.154	0.077
हरियाणा	2.5	9.7	12.2	4.07	0.194	0.065	0.032
उत्तर प्रदेश	14.0	27.5	41.5	13.83	0.677	0.226	0.113
बिहार	9.6	5.3	14.9	4.97	0.257	0.086	0.043
पश्चिम बंगाल	16.7	0.1	16.8	5.60	0.308	0.103	0.051
कुल	52.8	60.8	113.6	37.87	1.898	0.634	0.316

फसल अवशेष प्रबंधन विधियाँ

कम्पोस्ट	मृदा से निष्कासन	अवशेष दहन	मृदा में समावेश	अवशेष मल्च
1. जैव वर्धक 2. फास्फोरस घुलनकारी सूक्ष्म जीव 3. नाइट्रोजन स्तरीकरण जीवाणु 4. वर्मी कम्पोस्टिंग	1. अत्यधिक महंगा 2. अत्यधिक श्रमिक आवश्यकता 3. पादप पोषक तत्वों की हानि	1. नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, सल्फर, केल्सियम, एवं मैग्नीसियम का ह्रास 2. पर्यावरणीय समस्याएं	1. पादप पोषक तत्व उपलब्धता को घटाना 2. प्रारम्भिक अवस्था में फसल वृद्धि रोकना 3. अतिरिक्त रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता	1. मृदा अपरदन को कम करना 2. मृदा की भौतिक अवस्था को सुधारना

सारणी 2: मृदा से पोषक तत्वों का ह्रास

मृदा में अनुमानित पोषक तत्व	वर्ष	
सन्तुलन	2000	2020
रासायनिक उर्वरकों का उपयोग	18	29
फसल द्वारा पोषक तत्व अवशोषण	28	37
शेष	10	8
कार्बनिक पदार्थों से पोषक तत्वों की अनुमानित उपलब्धता	5	7

2. फसल दहन के परिणामस्वरूप बढे हुए तापमान से मृदा के लाभदायक सूक्ष्मजीव नष्ट हो जाते हैं जो की मृदा जैव विविधता के लिये एक गम्भीर चुनौती है।

3. एक टन धान अवशेष के दहन से 5.5 किलोग्राम नत्रजन, 2.3 किलोग्राम फॉस्फोरस, 25 किलोग्राम पोटाश, 1.2 किलोग्राम गन्धक एवं 400 किलोग्राम कार्बनिक पदार्थ का ह्रास होता है। फलस्वरूप मृदा की उर्वरता कम हो जाती हैं

4. फसल अवशेष जलने पर भारी मात्रा में मीथेन, कार्बन डाई ऑक्साईड, सल्फर डाई ऑक्साईड इत्यादि विषैली गैसों के उत्सर्जन से वायु की गुणवत्ता खराब होती है तथा पर्यावरण दूषित हो जाता है। परिणामस्वरूप वैश्विक तापमान में वृद्धि एवं मौसम परिवर्तन होता है।

5. विषैली वायु में श्वसन से अस्थमा व फैफड़ों में कैंसर जैसी बीमारियां फैलती है।

अत: इस उभरती फसल दहन समस्या से मुक्ति पाने हेतु फसल अवशेषों के उपयुक्त प्रबंधन की आवश्यकता है।

संरक्षित खेती: संरक्षित खेती के अन्तर्गत खेत तैयार करने हेतु जुताई नहीं करनी पड़ती है तथा फसल

अवशेषों को उसी खेत में मल्च के रूप में फैला देते हैं। और अवशेषों में टर्बो हैप्पीसीडर चलाकर आगामी फसल की बुवाई की जाती है। अत: फसल अवशेषों के दहन की आवश्यकता नहीं रहती तथा किसानों के समय व धन दोनों की बचत होती है।

आजकल पूरे विश्व में संरक्षित खेती पर बड़ा जोर दिया जा रहा है। पिछले कई दशकों से सघन खेती करने से, एक वर्ष में 2-3 फसलें और लगातार एक ही तरह की फसलें उगाने से, रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक व अनुचित प्रयोग, जैविक खादों के प्रयोग की अनदेखी करने के कारण कृषि में ज्यादा उत्पादन लागत और कम फायदा हो रहा है। संसाधनों की मात्रा और गुणवत्ता में कमी होने से आज विश्व के कई देशों में संरक्षण खेती बड़े व्यापक स्तर पर अपनाई जा रही है। विश्व में लगभग 106 मिलियन हेक्टेयर से ज्यादा जमीन पर संरक्षण खेती की जा रही है। संरक्षण खेती करने वाले देशों में अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, ब्राजील और अर्जेन्टीना प्रमुख हैं। इस विधि का मुख्य उद्देश्य यह है कि खेत की मिट्टी को न्यूनतम हिलाया जाए, उसकी जुताई न के बराबर की जाए, भारी मशीनों का कम से कम प्रयोग किया जाए व मृदा सतह को हर समय फसल अवशेषों या दूसरे किसी वनस्पति आवरणों से ढ़ककर रखा जाए। इससे फसलों की पैदावार बढ़ने के साथ-साथ संसाधनों जैसे मिट्टी, पानी, पोषक तत्व, फसल उत्पाद और वातावरण की गुणवत्ता भी बढ़ी है जो कि कृषि की लगातार अच्छी हालत के लिए बहुत जरूरी है।

फसल अवशेष प्रबंधन एवं सरंक्षित खेती के लाभ

1. धान की कटाई के बाद गेहूं की बुवाई के लिये भारी मात्रा में जुताई करने से गेहूं की बुवाई में 15 से 20 दिन की देरी हो जाती है जबकि शून्य जुताई द्वारा किसान गेहूं की अगेती जुताई कर सकता है जिससे दाना भरने की अवस्था में उच्च तापमान से होने वाले उत्पादन नुकसान को कम कर सकते है इसके अतिरिक्त बुवाई से पहले पलाव करने की भी जरूरत नहीं होती है।
2. मल्च मृदा कणों को जल व वायु के सीधे सम्पर्क में आने से रोककर, वर्षा जल के अन्त:शोषण को बढ़ाकर एवं जल बहाव को कम करके मृदा क्षरण को 50 प्रतिशत तक कम कर देती है। जिससे उर्वरक मृदा एवं पोषक तत्वों का खेत से ह्रास नहीं होता तथा मृदा उर्वरकता बनी रहती है।
3. मल्च द्वारा तापमान संतुलन (सर्दी में बढ़ाकर व गर्मी में कम करके) से बीज अंकुरण, पादप व जड़ की वृद्धि व दलहनी फसलों में नत्रजन स्थिरीकरण को बढ़ावा मिलता है तथा जायद की फसल को उच्च तापमान के बुरे प्रभाव से बचाती है।
4. मल्च, मृदा जल अंत:शोषण व जलधारण क्षमता को बढ़ाकर तथा वाष्पोत्सर्जन को कम करके मृदा जल की हानी को कम करती है। फलस्वरूप जल की मांग घटती है व जल उपयोग क्षमता बढ़ती है। सुखाग्रस्त क्षेत्रों में मल्च से नमी रहने के कारण उत्पादन बढ़ जाता है।
5. इसके साथ ही मल्च के प्रयोग से मृदा की भौतिक व रासायनिक दशा में सुधार होने से मृदा जीवों (जीवाणु, कवक व केचुऐं) की संख्या व गतिविधि में वृद्धि होती है।

इसके अतिरिक्त मल्च द्वारा मृदा की क्षारीयता, लवणता व अम्लता भी समय के साथ कम होती जाती है।

संरक्षण खेती अपनाकर न केवल फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन किया जा सकता है, बल्कि उनको जलने से जो पर्यावरण को नुकसान होता है उससे भी बचा जा सकता है। नई मशीनों के आने से फसल अवशेषों के आवरण में भी फसलों की बुवाई की जा सकती है। भविष्य में इसी तरह की खेती को अपनाना होगा जिससे हमारी भावी पीढ़ियां अच्छे से अपना जीवन निर्वाह कर सकें। धान-गेहूं फसल प्रणाली में किसान भाई इस प्रोद्योगिकी को अपनाकर अवशेषों का सही उपयोग कर सकते हैं साथ ही अपनी आय में भी वृद्धि कर सकते हैं।

□□□

मूँगफली की अधिक पैदावार के लिए उन्नत प्रौद्योगिकियाँ

गोपाल लाल चौधरी[1], राम स्वरूप बाना[2], कुलदीप सिंह राणा[2] एवं कैलाश प्रजापत[3]

[1]सस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर-813210

[2]सस्य विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

[3]भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001

भारत में तिलहनी फसलों में सोयाबीन के बाद मूँगफली दूसरी महत्वपूर्ण फसल है। पिछले वर्ष कुल तिलहन क्षेत्रफल का 19.3 प्रतिशत एवं उत्पादन का 29.5 प्रतिशत मूँगफली के अर्न्तगत था। मूँगफली के सभी भाग आर्थिक रूप से उपयोगी होते है। इसके दानों को सीधे खाने अथवा तेल निकालने के लिए उपयोग में लिया जाता है। तेल निकालने के उपरांत प्राप्त खली को पशुआहार एवं सांद्रित कार्बनिक खाद के रूप में उपयोग किया जाता है। फलियों को तोड़ने के बाद प्राप्त पर्णीय भाग पशुओं के लिए पौष्टिक चारा का महत्वपूर्ण स्रोत होता है। नत्रजन स्थिरीकरण क्षमता के कारण मूँगफली के बाद बोयी जाने वाली फसल में 25 से 50 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर नत्रजन की बचत की जा सकती है। वर्ष 2013-14 में मूँगफली के अर्न्तगत क्षेत्रफल 55.3 लाख हेक्टेयर था जिससे 96.7 लाख टन उत्पादन प्राप्त हुआ जबकि इस दौरान फसल की उत्पादकता 1750 किलोग्राम रही। प्रमुख उत्पादक राज्य गुजरात, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडू, राजस्थान, कर्नाटक, महाराष्ट्र एवं मध्य प्रदेश है। गुजरात राज्य अकेला 50 प्रतिशत से अधिक मूँगफली का उत्पादन करता है। हमारे देश में वर्तमान में 75 प्रतिशत से अधिक मूँगफली बारानी दशाओं में उगायी जा रही है जिससे इन क्षेत्रों में इसकी उत्पादकता काफी कम है। मूँगफली की कम एवं अस्थिर उत्पादकता के अन्य कारण कम उपजाऊ भूमि पर खेती, अनुपयुक्त किस्मों का चयन, असंतुलित उर्वरक प्रयोग एवं पादप रोग व कीटों की पर्याप्त रोकथाम न करना, आदि हैं। फसल की कम उत्पादकता से किसानों की आर्थिक स्थिति काफी हद तक प्रभावित होती है। इस परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक है कि अधिक उत्पादकता के लिए उन्नतशील सस्य विधियाँ अपनाकर इस फसल की खेती की जाये।

खेत का चुनाव व तैयारी

मूँगफली की फसल को वैसे तो विभिन्न प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है परन्तु, भरपूर उपज के लिए समतल एवं अच्छे जल निकास वाली बलुई दोमट से दोमट मिट्टी उपयुक्त रहती है जिसमें कैल्सियम प्रयाप्त मात्रा में हो एवं अम्लीयता व क्षारीयता से मुक्त हो। लवणीय मृदा में फसल उपज ज्यादा प्रभावित नहीं होती है जबकि उपयुक्त प्रबंधन द्वारा क्षारीय भूमि में भी इसकी खेती की जा सकती है। जहाँ की मृदा क्षारीयता से प्रभावित हो वहां प्रति तीसरे वर्श जिप्सम 5 टन प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए। जिप्सम को मई-जून में जमीन में मिला देना चाहिए। खरीफ में मूँगफली की खेती मुख्यतया बारानी दशाओं में की जाती है। खेत की तैयारी के लिए मानसून की पहली बरसात के साथ मिट्टी पलटने वाले हल से एक जुताई करें (15-20 से.मी. गहरी) और उसके बाद दो-तीन जुताईयां तबेदार हल से करनी चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद खेत में पाटा लगाना चाहिए जिससे खेत में ढेले न बनें।

उन्नत किस्में

तालिका 1. विभिन्न राज्यों के लिए मूँगफली की उपयुक्त किस्में

राज्य	खरीफ	रबी एवं ग्रीष्म (जायद)
गुजरात	जी जे जी 31 (जे 71), एल जी एन 2 (मंजरा), जी जे जी-एच पी एस 1 (जे एस पी-एच पी एस 44), धीरज 101, जी जी 5, जी जी 7, जी जी 20, टी जी 37 ए, जे एल 501, जी जे जी 17 (जे एस पी 48), जी जे जी 22 (जे एस एस पी 36)	जी जी 2, जी जी 6, डी एच 86 (प्रुथा), टी पी जी 41, जी जे जी 9 (जे 69), टी जी 26, टी जी 37 ए
राजस्थान	एल जी एन 2 (मंजरा), गिरनार 2, जी जी 7, टी जी 37 ए, टी बी जी 39, जे एल 501, आर जी 382, आर जी 425, एच एन जी 69	पी एम 1, पी एम 2, टी पी जी 41, डी एच 86 (प्रुथा), टी जी 37 ए
आंध्र प्रदेश	कादिरी 6, कादिरी 7, नारायणी	टी ए जी 24, कादिरी हरित-आंध्रा, आई सी जी वी 00350, टी पी जी 41
तमिलनाडू	वी आर आई 2, वी आर आई 6, टी एम वी जी एन 13, टी एन ए यू सी ओ 6	वी आर आई 2, वी आर आई 6, टी एम वी जी एन 13, टी पी जी 41
कर्नाटक	जी पी बी डी 4, आई सी जी वी 91114, चिंतामणि 2	टी ए जी 24, डी एच 86, आई सी जी वी 00350, टी पी जी 41
महाराष्ट्र	जे एल 501, ए के 159, टी के जी 19 ए, टी एल जी 45, टी ए जी 24	जे एल 286, जे एल 220, टी पी जी 41, डी एच 86 (प्रुथा), टी जी 26
मध्य प्रदेश	जी जी 5, जे जी एन 3, जे जी एन 23, जी जी 8	टी पी जी 41, टी जी 37 ए, टी जी 26
पश्चिम बंगाल	गिरनार 3, जी पी बी डी 5, विजेथा, वसुंधरा	डी एच 86, टी जी 51, टी जी 38 बी, टी पी जी 41, डी एच 86 (प्रुथा), टी जी 37 ए

मूंगफली के खेत की अधिक गहरी जुताई नहीं करनी चाहिए। जिन क्षेत्रों में वर्षा बहुत कम हो वहां गर्मी में एक गहरी जुताई करे जिससे नमी का संरक्षण हो सके एवं मानसून की पहली बरसात होने पर कम से कम जुताई के साथ फसल की बुआई करे। अंतिम जुताई के समय 1.5 प्रतिशत क्यूनॉलफॉस 25 किलो ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से मृदा में मिला दें, ताकि भूमिगत कीड़ों से फसल की सुरक्षा हो सके।

बुआई का समय

बारानी क्षेत्रों में उगाई जाने वाली मूँगफली में बुआई का समय फसल उत्पादकता एवं उत्पादन को बहुत अधिक प्रभावित करता है। अत: खरीफ में मूँगफली की बुवाई मानसून शुरू होने के साथ ही कर देनी चाहिये। उत्तरी भारत में मूँगफली की अच्छी पैदावार के लिए बुआई का उत्तम समय 15 जून से 15 जुलाई के मध्य का होता है। जहाँ पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो उन क्षेत्रों में मध्य मई में मूँगफली की बुआई की जा सकती है। ग्रीष्म (जायद) में मूँगफली की बुआई का उपयुक्त समय फरवरी मध्य से मार्च अन्त तक है।

बीजदर एवं बीजोपचार

मूँगफली की बीजदर किस्मों के अनुसार होती है। गुच्छेदार किस्मों के लिये 75-80 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर एवं फैलने वाली किस्मों के लिये 60-70 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर बीजदर उपयुक्त रहती है। बुआई हेतु बीज के लिये स्वस्थ फलियों का चयन करना चाहिए या उनका प्रमाणित बीज ही बोना चाहिए। बुआई से 10-15 दिन पहले दानों को फलियों से अलग करना चाहिए। बीज

को बुआई से पहले उपयुक्त रयायन से उपचारित कर लेना चाहिए। बीजोपचार के लिए 3 ग्राम थाइरम अथवा 2 ग्राम मेन्कोजेब या कार्बेण्डाजिम (बॉविस्टीन) कवकनाशक दवाई प्रति किलो ग्राम बीज की दर से बीजोपचार करने से फसल पर लगने वाले रोगों को काफी हद तक कम किया जा सकता है। कवकनाशक से बीजोपचार के बाद दीमक एवं सफेद लट से बचाव के लिये क्लोरपायरिफॉस (20 ई.सी.) का 10 से 15 मि.ली. प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से बीजोपचार करें। मूँगफली लेग्युमिनेसी कुल की फसल है अत: बीज को उपयुक्त राइजोबियम कल्चर से उपचारित करना चाहिए। इसके लिए राइजोबियम लेग्युमिनोसेरम नामक कल्चर से बीज को 20 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से उपचारित करें। बीजोपचार करते समय ध्यान रखें की सबसे पहले कवकनाशक फिर कीटनाशक एवं अंत में राइजोबियम कल्चर से उपचारित करें। बीज को बुआई के 10 से 12 घंटे पहले राइजोबियम कल्चर से उपचारित करें एवं छाया में सुखाने के बाद बुआई के लिए उपयोग में लेवें।

बुआई

सफल फसल उत्पादन के लिए उचित बीजदर के साथ उचित दूरी पर बुआई करना आवश्यक होता है। गुच्छेदार किस्मों के लिए कतार से कतार की दूरी 30 से. मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 10 से.मी. रखें जबकि फैलने वाली किस्मों के लिए कतार से कतार की दूरी 45 से.मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 10 से.मी. रखें। बीज को 5 से 6 सें.मी. गहराई पर बोयें।

पोषक तत्व प्रबंधन

उर्वरकों का उपयोग: फसल उत्पादन में टिकाऊपन के लिए उर्वरकों का संतुलित उपयोग बहुत आवश्यक होता है। संतुलित उर्वरक उपयोग के लिए नियमित मृदा परीक्षण हो एवं मृदा परीक्षण के आधर पर उर्वरकों की मात्रा फसल में दी जावें। लेग्युमिनेसी कुल की फसल होने के कारण मूँगफली को बहुत कम नत्रजन की आवश्यकता होती है। अत: फसल का अधिक उत्पादन लेनें के लिए बारानी क्षेत्रों में 20 किलोग्राम नत्रजन, 40 किलोग्राम फास्फोरस एवं 20-30 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर जबकि सिंचित क्षेत्रों में 25-30 किलोग्राम नत्रजन, 50-60 किलोग्राम फास्फोरस एवं 40 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर की मात्रा अनुमोदित की गयी है। उर्वरकों की संपूर्ण मात्रा को बुआई के समय बीज से लगभग 5 सें.मी. नीचे मृदा में उर कर देवें। खड़ी फसल में कभी भी नत्रजन उर्वरक का उपयोग नहीं करें। अच्छी उपज के लिए फसल बुआई के समय जिप्सम का 250 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर प्रयोग करना चाहिए। अगर किसी कारण से बुआई के समय जिप्सम को मृदा में नहीं डाला गया हो तो जब फसल 40-45 दिनों की हो जावें तब पौधों की जड़ों में डालना चाहिए।

फसल से अधिक उपज प्राप्त करने के लिए सूक्ष्म पोषक तत्वों का उपयोग अति आवश्यक होता है। जिंक की कमी वाली मृदा में जिंक डालने से करीब 15 से 20 प्रतिशत तक पैदावार में वृद्धि होती है। जिंक की पूर्ति हेतु भूमि में बुआई से पहले 25 किलो ग्राम जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर अकेले या जैविक खाद के साथ प्रयोग किया जा सकता है। अगर खड़ी फसल में जिंक की कमी के लक्षण दिखाई दे तो 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट व 0.25 प्रतिशत बुझे हुए चूने (200 लीटर पानी में 1 किलो ग्राम जिंक सल्फेट तथा 0.5 किलो ग्राम बुझे हुए चूने) का घोल बनाकर पर्णीय छिड़काव करना चाहिए। लोहा की कमी वाले क्षेत्रों में फसल में जैसे ही इसकी कमी के लक्ष्ण दिखाई दे तो 1 प्रतिशत फैरस सल्फेट (1 लीटर पानी में 10 ग्राम फैरस सल्फेट) का पर्णीय छिड़काव करना चाहिए। बोरोन की कमी वाली मृदा में बोरेक्स 10 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर अकेले या जिप्सम के साथ खड़ी फसल में 40-45 दिनों की अवस्था में देवें।

थायो युरिया का प्रयोग

अनुसंधानों एव परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि थायो युरिया के प्रयोग से मूँगफली की उपज में सार्थक वृद्धि

की जा सकती है। थायो युरिया में उपस्थित सल्फर के कारण पौधें की आन्तरिक कार्यिकी में सुधार होता है। थायो युरिया में 42 प्रतिशत गंधक एवं 36 प्रतिशत नत्रजन होती है। मूँगफली की फसल में 0.1 प्रतिशत थायो युरिया (500 लीटर पानी में 500 ग्राम थायो युरिया) के दो पर्णीय छिड़काव उपयुक्त पाये गये हैं। पहला छिड़काव फूल आने के समय (बुआई के 40 दिन बाद) एवं दूसरा छिड़काव फलियां बनते समय (बुआई के 70 दिन बाद) करना चाहिए।

कार्बनिक खादें: कार्बनिक खादों में पोषक तत्व बहुत कम मात्रा में पाये जाते है परन्तु इनके उपयोग से मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशाओं में सुधार होता है जिससे मृदा की जल धारण क्षमता एवं उर्वरता में वृद्धि होती है। कार्बनिक खादें पौधों को मुख्य पोषक तत्वों के साथ-साथ सूक्ष्म पोषक तत्व भी प्रदान करती है। अत: अधिक उपज एवं मृदा की भौतिक दशा में सुधार के लियें 10 टन प्रति हेक्टेयर की दर से अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद बुआई के एक माह पूर्व खेत में डालकर जुताई कर अच्छी तरह मृदा में मिला दें। गोबर की खाद का उपयोग 3 साल में एक बार अवश्य करना चाहियें।

जैव उर्वरक: जैव उर्वरकों जैसे राइजोबियम, पी. एस. बी., वॉम आदि के उपयोग से फसल उत्पादन में 15 से 20 प्रतिशत तक वृद्धि की जा सकती है। समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन के लिए 20 ग्राम प्रति किलो ग्राम बीज के हिसाब से राइजोबियम एवं पी.एस.बी. से बीजोपचार लाभदायक रहता है, इससे नत्रजन एवं फास्फोरस की उपलब्ध्ता बढ़ती है व उपज में वृद्धि होती है।

पौधों की जड़ों पर मिट्टी चढ़ाना

मूँगफली के पौधों की जड़ों पर अंतिम निराई गुडाई के साथ मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। मिटी चढ़ाने से मूँगफली में बनने वाले खीलों (पेग) को मिट्टी में घुसने एवं विकाश में सहायता मिलती है। मिट्टी चढ़ाने का कार्य फसल की 45 दिनों की अवस्था तक कर लेना चाहिए। इसके बाद मिट्टी चढ़ाने से खीलों के टूटने से उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

खरपतवार प्रबंधन

खरपतवार फसल के साथ जल, पोषक तत्वों, स्थान एवं प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। खरपतवारों के कारण मूँगफली की उपज में 40 से 45 प्रतिशत तक की कमी आ जाती है। मूँगफली की फसल शुरूआती 30-35 दिनों की अवस्था में खरपतवारों के प्रति संवेदनशील होती है। अत: खरपतवारों को खेत से निकालने और नमी संरक्षण के लिए फसल में दो निराई-गुड़ाई करना लाभदायक रहता है जिनमें पहली बुआई के 15-20 दिनों एवं दूसरी 30-35 दिनों बाद करनी चाहिए। खरपतवार नियन्त्रण के लिए खुरपी एवं कस्सी (हैण्ड हो) का प्रयोग किया जाता है। मूंगफली में अधिकीलन अवस्था के बाद (बुआई के 40-45 दिनों बाद) खरपतवार नियंत्रण के लिये निराई-गुडाई नहीं करनी चाहिये। मूंगफली में रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिये फ्लूक्लोरालिन (बासालिन) या ट्राईफ्लूरेलिन (ट्रेफलान) की 0.75-1.0 किग्रा./है सक्रिय तत्व की मात्रा बुवाई से ठीक पहले मिट्टी में मिलाए। अगर बुआई से पहले खरपतवारनाशी का प्रयोग नहीं किया गया हो तो बुवाई से 1-3 दिन के अन्दर एलाक्लोर (लासो) की 1.5-2.0 किग्रा./है या मेटोलाक्लोर (डुअल) की 1.0-1.5 किग्रा./है या पेन्डीमिथैलिन (स्टॉम्प) की 1.0-1.25 किग्रा./है सक्रिय तत्व की मात्रा को छिड़काव द्वारा अच्छी तरह मिट्टी में मिलाए। खरपतवारनाशी प्रयोग के समय खेत में पर्याप्त नमी होनी आवश्यक है। खड़ी फसल में घास जाति के खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण के लिये क्यूजालोफाप (टरगासुपर) की 40-50 ग्राम/है सक्रिय तत्व की मात्रा बुवाई के 20-25 दिन पर छिड़काव करें। खड़ी फसल में खासकर चौड़ी पत्ती वाले एवं कुछ घास कुल के खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण के लिए इमेजेथाफायर (परस्यूट 10 प्रतिशत एस.एल.) की 75-100 ग्राम/है सक्रिय तत्व की मात्रा बुवाई के 20-25 दिन पर छिड़काव करें।

जल प्रबंधन

खरीफ मौसम में उगाई जाने वाली मूँगफली की फसल प्राय: वर्षा के जल पर आधरित होती अत: सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। जिन क्षेत्रों में सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध हो वहां पर नमी की कमी में फूल आने, अधिकीलन अवस्था (खीलें बनते समय), फलियाँ बनते समय एवं दाना बनते समय सिंचाई करना लाभप्रद होता है। रबी/जायद में उगाई जाने वाली मूँगफली की फसल में बुआई के लिए पलेवा करना चाहिये। बुआई के बाद 15-20 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए। सिंचाई करते समय इस बात का ध्यान रहें की खेत में पानी जमा नहीं होना चाहिए। जिन खेतों में पानी भराव की समस्या हो वहां पर जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहियें।

कीट एवं रोग प्रबंधन

मूँगफली की फसल में अनेक कीट एवं रोग लगते है जो फसल की उपज वृद्धि तथा टिकाउपन में एक प्रमुख समस्या है। इस फसल को कीटों एवं रोगों से काफी नुकसान पहुंचता है जिससे इसकी उपज में काफी कमी हो जाती है। यदि समय रहते इन रोगों एवं कीटों का नियंत्रण कर लिया जाये तो मूँगफली की उत्पादकता में बढ़ोत्तरी की जा सकती है। सफेद लट, पर्ण सुरंगक (लीफ माइनर), फली छेदक, रोमिल सूंडी, माहूं, चेंपा एवं दीमक मूँगफली के मुख्य नाशी कीट, जबकि कालर विगलन, तना विगलन, शुष्क जड़ विगलन, टिक्का (अगेती एवं पछेती), अल्टरनेरियां पर्ण अंगमारी, रोली एवं कलिका उत्तक क्षय मूँगफली के मुख्य रोग हैं।

मूँगफली के प्रमुख कीट एवं प्रबंधन

सफेद लट: यह मूँगफली को क्षति पहुँचाने वाला प्रमुख कीट है। इस कीट की गिडारें पौधों की जड़ें खाकर पूरे पौधे को सुखा देती हैं। यह कीट प्रथम वर्षा के बाद आसपास के पेड़ों पर आते हैं और अंडे देने के समय खेतों में आ जाते हैं। कीट के प्रौढ़ को पेड़ों पर ही नष्ट कर देना चाहिए ताकि वे खेत में अण्डे न दे सकें। जिन क्षेत्रों में सफेद लट की समस्या हो वहां बुवाई से पहले फोरेट 10 जी 10 किलो ग्राम प्रति हेक्टेयर या कार्बोफ्युरॉन 3 जी 25 किलो ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में डालें। क्लोरोपायरिफास (20 ई.सी.) 10 से 15 मि.ली. प्रति किलोग्राम अथवा इमिडाक्लोप्रीड (20 एस.एल.) 5 मि.ली. प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से बीजोपचार प्रारंभिक अवस्था में पौधों को स्फेद लट से बचाता है। खड़ी फसल में प्रकोप होने पर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई सी रसायन की 3-4 लीटर मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें। फोरेट 10 जी या फ्युराडान (3 प्रतिशत) दानो को 25 किलो ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर खेत में डालना चाहिए।

दीमक: यह सूखे की स्थिति में पौधे की जड़ों, फलियों तथा तनें को काटती हैं। जड़ काटने से पौधे सूख जाते हैं। इसके नियंत्रण हेतु सफेद लट के समान नियंत्रण उपाय अपनावें।

पर्ण सुरंगक (लीफ माइनर): इसका प्यूपा भूरे लाल रंग का होता है एवं मादा कीट छोटी तथा चमकीले रंग की होती हैं। इस कीट की किशोर गिडार पत्तियों में अन्दर ही अन्दर हरे भाग को खाते रहते हैं जिससे पत्तियों पर सफेद धारियाँ सी बन जाती हैं। इस कीट से प्रभावित पौधों की पत्तियों पर पीले रंग के धब्बे दिखाई पड़ने लगते हैं। इसकी रोकथाम के लिए इमिडाक्लोप्रीड (20 एस.एल.) 1 मि.ली. को 1 लीटर पानी में अथवा डाइमिथोएट (25 ई.सी.) 1.5 मि.ली. को 1 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। कीटनाशक को 45 एवं 70 दिनों पर छिड़क कर इस कीट का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है।

रोमिल सूंडी: इस कीट के शरीर पर घने बाल होने के कारण इस कीट को बालदार सूंडी कहा जाता है। इस कीट की छोटी-छोटी सूंडियां पौधे की मुलायम पत्तियों को खा जाती हैं जिससे पौधे की पत्तियों पर केवल शिरायें ही शेष बचती हैं। इस कीट के नियंत्रण के लिए फोलीडोल 2 प्रतिशत धूल का 25-30 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर या थायोडान (35 ई.सी.) 1 मि.ली. को 1

लीटर पानी में अथवा क्यूनालफॉस (25 ई.सी.) 2 मि. ली. को 1 लीटर पानी में अथवा क्लोरोपायरिफॉस (20 ई.सी.) 2.5 मि.ली. को 1 लीटर पानी में घोल बनाकर खड़ी फसल में छिड़काव करना चाहिए।

फली छेदक (चने की सूंडी): हरे रंग की सूंडी पत्तियों को खाकर फसल को हानि पहुँचाती है। सूंडियों की अधिकता होने से पौधों पर केवल पर्ण वृन्त एवं टहनियां ही शेष रह जाती है। इस कीट के जैव नियंत्रण के लिए एन.पी.वी. का 250 एल.ई. प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें। फेरोमोन जाल का प्रयोग भी किया जा सकता हैं। रासायनिक नियंत्रण के लिए क्यूनालफॉस (25 ई.सी.) 2.5 मि.ली. दवा को 1 लीटर पानी में घोलकर खड़ी फसल में छिड़काव करना चाहिए।

चेंपा एवं माहू: सामान्य रूप से छोटे-छोटे हरे एवं भूरे रंग के कीट होते हैं तथा बहुत बड़ी संख्या में एकत्र होकर पौधों के रस को चूसते हैं। साथ ही वाइरस जनित रोग के फैलाने में सहायक भी होती है। इसके नियंत्रण के लिए डाइमिथोएट (रोगोर) 30 ई.सी. या मोनोक्रोटोफॉस (न्यूवाक्रोन) 36 एस.एल. या इमिडाक्लोप्रीड (20 एस. एल.) की 1 लीटर मात्रा को 600-800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर में छिड़काव करना चाहिए। मिथाइल पैराथियान (2 प्रतिशत धूल) 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर के भुरकाव द्वारा भी इस कीट का नियंत्रण किया जा सकता है।

मूँगफली के प्रमुख रोग एवं प्रबंधन

कालर विगलन रोग: यह रोग फसल की प्रारम्भिक अवस्था में फैलता है। रोग ग्रसित पौधें जमीन के पास से सड जाते है एवं टूटकर गिर जाते है। रोग से बचाव हेतु बीजों को 3 ग्राम थाइरम अथवा 2 ग्राम मेन्कोजेब या कार्बेण्डाजिम (बॉविस्टीन) कवकनाशक दवाई प्रति किलो ग्राम बीज की दर से उपचारित करके बुआई करें। नीम या अरण्डी की खली का 500 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग द्वारा भी इस रोग का नियंत्रण किया जा सकता है।

तना विगलन रोग: इस रोग से प्रभावित पौधों के तनों पर फफूंद के धागेनुमा सफेद तंतु दिखाई देने लगते है। पौधा आधार से पीला पड़कर सूख जाता है। मूँगफली की उठी हुयी क्यारी में बुआई कर इस रोग के प्रभाव को कम किया जा सकता है। बीज को 3 ग्राम थाइरम अथवा 2 ग्राम मेन्कोजेब या कार्बेण्डाजिम (बॉविस्टीन) कवकनाशक दवाई प्रति किलो ग्राम बीज की दर से उपचारित करके बुआई करें।

शुष्क जड़ विगलन रोग: नमी की कमी तथा तापमान अधिक होने पर यह बीमारी जड़ों में लगती है। जड़ें भूरी होने लगती हैं और पौधा सूख जाता है। इस रोग से बचाव हेतु स्वस्थ बीजों का उपयोग करें एवं बीजों को 3 ग्राम थाइरम अथवा 2 ग्राम मेन्कोजेब या कार्बेण्डाजिम (बॉविस्टीन) कवकनाशक दवाई प्रति किलो ग्राम बीज की दर से उपचारित करके बुआई करें।

टिक्का रोग: यह इस फसल का प्रमुख रोग है। सामान्यतया यह रोग दो प्रकार का होता है। पहला अगेती टिक्का, फसल में इस रोग के लक्षण बुआई के एक महिने बाद दिखाई देनें लगते है। प्रारंभ में पत्तियों की ऊपरी सतह पर छोटे-छोटे गोल आकार के भूरे धब्बे दिखाई देते हैं। अनुकूल अवस्था में धब्बों के आकार तथा संख्या में वृद्धि होती है। अधिक प्रकोप होने पर तने और पुष्प शाखाओं पर भी धब्बे बन जाते हैं एवं पौधें समय से पहले ही जीर्णता प्रकट कर देते है। दूसरा पछेती टिक्का रोग होता है, इस रोग के लक्षण बुआई के 55-60 दिनों बाद दिखाई देने लगते है। इस रोग से ग्रस्त पौधों की पत्तियों की निचली सतह पर लगभग गोल एवं काले रंग के धब्बे दिखाई पड़ते हैं। धब्बों का आकार अगेती टिक्का की अपेक्षा बड़ा होता है। रोग की उग्र अवस्था में कई धब्बे आपस में मिल जाते है जिसके परिणामस्वरूप पत्तियां काली पड़कर सूख जाती है एवं झड़ जाती है। इस रोग से बचाव के लिए रोग रोधी किस्में उगाये जैसे- जी जी 7, बी जी 3, प्रूथा, गिरनार 1, टी जी 37 ए, टी जी 26 आदि। खेत में जैसे ही रोग से प्रभावित पौधें दिखाई दें उनकों उखाड़ कर भूमि में दबा देवें या फिर

जला देवें। बाजरा या ज्वार के साथ अन्त: फसल (3 लाइन बाजरा या ज्वार व 1 लाइन मूँगफली) लेकर भी इस रोग से बचाव किया जा सकता है। रोग के लक्षण दिखाई देनें पर, नीम की पत्तियों का रस (20-50 मि. ली./लीटर पानी) या निम्बोली का रस (40-50 मि.ली. /लीटर पानी) कार्बेन्डाजिम के 0.1 प्रतिशत घोल या क्लोरोथेलोनिल के 0.2 प्रतिशत घोल या मैंकोजेब (डाइथेन एम 45) के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

अल्टरनेरियां पर्ण अंगमारी: पौधों की रोग ग्रसित पत्तियों पर असमान आकार के भूरे रंग के छालेनुमा घब्बे दिखाई देते है जिनके चारों तरफ पीले रंग का घेरा बना होता है। आगे चलकर रोग ग्रसित पत्तियां अंदर की तरु मुडकर भंगुर हो जाती है। इस रोग के उपचार के लिये टिक्का रोग के समान नियंत्रण उपाय अपनावें।

रोली रोग: इस रोग से प्रसित पौधों की पत्तियों की निचली सतह पर नारंगी-लाल रंग के बहुत सारे महीन धब्बे दिखाई देने लगते है जो बाद में गहरे भूरे रंग की हो जाते है। रोग की अधिकता में धब्बे पत्तियों की उवरी सतह, टहनियों, फूलों एवं खीलों पर भी दिखाई देने लगते है जिससे पत्तियां सूख जाती है परन्तु पौधें से जुड़ी रहती है। रोग से बचाव के लिए फसल की अगेती बुआई करें। बाजरा या ज्वार के साथ अन्त: फसल (3 लाइन बाजरा या ज्वार व 1 लाइन मूँगफली) लेकर भी इस रोग से बचाव किया जा सकता है। रोग के लक्षण दिखाई देनें पर, क्लोरोथेलोनिल के 0.2 प्रतिशत घोल या मैंकोजेब (डाइथेन एम 45) के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

कलिका उत्तक क्षय रोग: यह एक विषाणु जनित रोग है एवं थ्रिप्स कीट के द्वारा यह रोग बीमार पौधे से निरोगी पौधे तक फैलता है। इस रोग के कारण शीर्ष कलिकायें सूख जाती हैं जिससे पौधों की बढ़वार रुक जाती है। रोग ग्रसित पौधों में नई पत्तियां छोटी एवं गुच्छे में निकलती हैं। प्राय: अंत तक पौधा हरा बना रहता है परन्तु फल-फूल नहीं बनते हैं। जल्दी बोई गयी फसल रोग से कम प्रभावित होती अत: बचाव के लिए अगेती बुआई करें। खरपतवार रोग को क्षरण देते है इसलिये फसल को खरपतवारों से मुक्त रखना चाहिए। जल्दी बढ़ने वाली फसलें जैसे बाजरा, ज्वार के साथ अन्त: फसल (7 लाइन बाजरा या ज्वार व 1 लाइन मूँगफली) लेकर भी इस रोग से बचाव किया जा सकता है। रोग वाहक के नियंत्रण के लिये मोनोक्रोटोफॉस दवा का 1. 6 मि.ली. प्रति लीटर पानी अथवा डाइमिथोएट दवा का 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

फसल कटाई, मंड़ाई एवं रख रखाव

मूँगफली की फसल में कटाई का समय उपज एवं गुणवता के लिहाज से बहुत महत्वपूर्ण होता है। मूँगफली में सभी फलियाँ एक साथ नहीं पकती हैं अत: जब 75-80 प्रतिशत फलियाँ पककर तैयार हो तब फसल की खुदाई करनी चाहिए। मूँगफली में जब पुरानी पत्तियां पीली पड़कर झड़ने लगें, फली का छिलका कठोर हो जाए, फली के अन्दर बीज के ऊपर की परत गहरे गुलाबी या लाल रंग की हो जाए एवं बीज कठोर हो जाए उस समय फलियों की खुदाई फावड़े अथवा पत्तीदार हैरो से कर सकते है। खुदाई के समय मृदा में उचित नमी मौजूद होनी चाहिये। उचित गहराई पर खुदाई करें एवं खुदाई के बाद मूँगफली के पौधों के छोटे-छोटे ढ़ेर बनाकर खेत में ही सूखने के लिए छोड़ देना चाहिए। सूखने के बाद फलियों को हाथ से अथवा थ्रेशर की सहायता से अलग कर लेना चाहिए। इसके बाद फलियों को अच्छी तरह साफ करें एवं जब फलियों में नमी की मात्रा 7-8 प्रतिशत हो जावें तब बोरियों में भरकर भंडारित कर लेवें। अधिक नमी पर भंडारण करने से मूँगफली की फलियों में *एसपरजिलस फ्लेवस* नामक कवक उत्पन्न हो जाता है जिससे इसके दानों में एफलाटोक्सिन नामक जहरीला पदार्थ बनता है। ऐसी मूँगफली का सेवन करना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। अत: मूँगफली की फलियों को अच्छी तरह से सुखाकर नमी रहित स्थान पर भंडारित करें।

□□□

आण्विक प्रजनन एवं बागवानी फसल सुधार हेतू जैव प्रौद्योगिकी

निमिषा शर्मा, नमिता एवं सपना
भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

जैव जगत में वर्तमान प्रगति के साथ, अजैव और जैविक तनाव जैसी चुनौतियों से लड़ने के लिए नयी रणनीतियाँ को बनाना सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य है। इस दिशा में सकारात्मक कदम उठा कर, उच्च गुणवत्ता वाले साथ ही अधिक उत्पादन देने वाली किस्मों को तैयार किया जा सकता है। बागवानी फसलों से बहुत सारे आर्थिक और स्वास्थ्य लाभ को अर्जित करने हेतु, इनके विकास में जो अवरोध है उन्हें दूर करना अति आवश्यक हैं। फसल प्रजनन का मुख्य उद्देश्य पौधों और फल विशेषताओं दोनों में सुधार लाने का है। बागवानी फसलों को पारंपरिक ग्राफ्टिंग, काटने के माध्यम से, हवा लेयरिंग आदि से लगाया जाता है। पारंपरिक प्रजनन से उत्पादन में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। परम्परागत प्रजनन से एक सीमित हद तक मदद मिली है एवं ब्रीडर को किस्म के चयन में वर्षों लग जाते हैं। इसलिए इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाने जरुरी है। आनुवंशिक सुधार में तेजी लाने के लिए, नए तरीकों का पता लगाना साथ ही ऊतक संवर्धन, सूक्ष्म प्रवर्धन द्वारा खेती करना भी जरुरी है। इससे पौधों का तेजी से गुणन किया जाता है। जैव प्रौद्योगिकी तकनीक का उपयोग प्रगति की इस दिशा मे बहुत से नए आयाम खोलता है। मार्कर सहायक चयन, पितृत्व विश्लेषण , क्लोनल फिंगरप्रिंटिंग, आनुवंशिक विविधता जानकारी, आनुवंशिक संबंध नक्शे के विकास, प्रजनन में स्वाद, रंग, खुशबू, विटामिन, और अन्य विषयों में भी शोध की जरुरत है। साथ ही विश्वसनीय आनुवंशिक परिवर्तन प्रोटोकॉल को भी अच्छी तरह विकसित करने की जरुरत है। आनुवंशिक विकास जैसे मार्कर सहायक चयन आदि से बाग़वानी फसलों में बहुत से सुधार संभव हो पाए है साथ ही इस दिशा में और भी विकास की जरुरत है। आणविक प्रजनन की सफलता काफी हद तक उपलब्ध जीनोमिक संसाधनों पर निर्भर करता है। बागवानी फसलों में जीनोमिक संसाधन हालांकि दुर्लभ हैं परन्तु आज के समय में जीनोम सिक्वेंसिंग की बहुत सी तकनीक उपलब्ध है साथ ही आने वाले समय में इसकी लागत और कम होने की संभावना है जिससे भविष्य में इन फसलों में असीम सुधार की सम्भावनाये है। बागवानी फसल सुधार हेतु जैव प्रौद्योगिकी की उपयोगिता को सारांश मे वर्णित किया गया है।

ऊतक संवर्धन

ऊतक संवर्धन से तैयार पौधों में कायिक प्रतिरूप भिन्नता मिलती है जो रोग प्रतिरोधी पौधे विकसित करने के काम आ सकती है। साथ ही बहुत से जैविक और अजैविक प्रतिरोधी पौधों का भी चयन किया जा सकता है। ऊतक संवर्धन से बनाये गए पौधे एक सामान होते है। पराग कण को भी अगुणित सवर्धन के लिए उपयोग में लाया जाता है। अत: सूक्ष्म प्रवर्धन से बाग़वानी फसलों के एक जैसे बहुत सारे पौधे तैयार किये जा सकते है जिनका आनुवंशिक संघटन एक जैसा होता है और उपयोगी गुणों से युक्त पौधे मिल जाते है।

मार्कर सहायक चयन

क्लोनल पहचान पहले लक्षणों के आधार पर ही की जाती थी अर्थात बाहरी लक्षणों को देख कर, पर यह उतना विश्वसनीय तरीका नहीं है। आणविक मार्कर जीनोमिक्स सर्वेक्षण के लिए मुख्य उपकरण की तरह काम कर रहे हैं। आणविक चिन्हक और घने आणविक आनुवंशिक नक्शे की उपलब्धता से मार्कर सहायक चयन संभव हो गया है। मार्कर की मदद से होने वाले चयन में डी.न.ए. मार्कर प्रमुख है। हर मार्कर की अपनी कमिया और लाभ है। पिछले कुछ दशकों में बहुत से मार्कर विकसित हुए है जिनमें से आर.ए.पी.डी., आई. आई.एस.एस.आर., एस.एस.आर., वी.न.टी.आर., ए.एफ. एल.पी., आर.एल.एफ.पी. है जो आनुवंशिक विविधता को जानने, किस्मों के चयन, आनुवंशिक नक्शे बनाने में महत्वपूर्ण है। आजकल एस.न.पी. का बहुत प्रचलन है क्योंकि यह अकेले नुक्लियोटाइड की पहचान भी कर सकता है।

आनुवंशिक विविधता और जर्मप्लाज्म भेदभाव के लिए आण्विक मार्कर

आणविक दृष्टिकोण किस्मों या प्रजातियों स्तर पर आनुवंशिक विविधता निरुपक के लिए उपयोगी होते हैं। आणविक मार्कर आनुवंशिक परिवर्तन, पहचान, और प्रजनन और उत्पादन आबादी में संबंधों के प्रबंधन से संबंधित सवालों के जवाब देने के लिए इस्तेमाल किया जाते हैं। यह पौधों की वृद्धि के दौरान किसी भी समय किसी भी ऊतक से इस्तेमाल किया जा सकता है। मार्करों को सफलतापूर्वक पितृत्व परीक्षण, बीज के बाग़ों में बाहरी पराग संदूषण के अध्ययन के अनुमान लगाने में किया जाता है। जिसका उपयोग जीन फ्लो के अध्ययन में किया जाता है। आनुवंशिक परिवर्तन को सूक्ष्म प्रसार और इन विट्रो जर्मप्लाज्म से तैयार पौधो में जानना भी जरुरी है। ताकि कायिक विविधता से भी बचाव किया जा सके।

जीनोमिक उपक्रम

जीनोम अनुक्रम की आगामी उपलब्धता तथा तेजी से शक्तिशाली कम लागत और उच्च अनुक्रमण प्रौद्योगिकी से सम्बंधित बाकी वंशो के भी पूरे जीनोम की जानकारी तुलनात्मक अध्ययन से प्राप्त की जा सकती है। दूसरी पीढ़ी के अनुक्रमण (आरएनए और चिप अनुक्रमण, इलूमिना, सॉलिड, रॉश (454) आदि) और सबसे हाल ही में तीसरी पीढ़ी के अनुक्रमण प्रौद्योगिकी जैसे उन्नत स्वचालित जीनोम अनुक्रमण प्रौद्योगिकी के उपयोग के कुछ ही घंटों में समवर्ती अनुक्रम के हजारों या लाखों की सख्यां में प्राप्त की जा सकती है। जैवप्रौद्योगिकी सूचना के लिए राष्ट्रीय केन्द्र (एन.सी.बी.आई.) दुनिया के सबसे बड़ा डेटाबेस है जिसमे जीनोमिक और प्रोटिओमिक अनुक्रम से संबंधित सभी जानकारी है।

जेनेटिक मैपिंग

जीन अनुक्रमण की आधुनिक तकनीकों, माइक्रोएरे प्रयोगों से एक जीव की कोशिका में जीन और प्रोटीन की अभिव्यक्ति समझी जा सकती है। इस तरह से फलों में भी जेनेटिक मैपिंग की जा सकती है जिससे उपयोगी जीनो का पता लगाया जा सकता है जो मात्रात्मक गुणों को निर्धारित करते है। जीनोटीपीकली गुणों का पता लगाना ज्यादा अच्छा है क्योकि फलों में बाहरी तौर पर पता लगाने के लिए फल आने तक इंतजार करना पड़ता है साथ ही जमीन की भी ज्यादा जरूरत रहती है जिससे लागत अधिक आती है।

जीन अभियांत्रिकी एवं आण्विक प्रजनन

जैव प्रौद्योगिकी तकनीक को पौधों में व्यापक स्तर पर उपयोगी उत्पाद उत्पन्न करने हेतु भी प्रयोग किया जाता है। इस विधि द्वारा विभिन्न प्रकार के शर्करा, वसा, प्रोटीन एवं द्रितीयक उत्पाद उत्पन्न किये जाते हैं, जो मानव एवं पशुओं के स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। आज के तकनीकी युग में बहुत सारे महत्वपूर्ण परिवर्तन इस क्षेत्र में हो रहे हैं। जिसमें स्वास्थ्य एक

महत्वपूर्ण स्थान रखता हैं। यह सभी जानते हैं कि संतुलित आहार शर्करा, प्रोटीन, वसा इत्यादि के पर्याप्त मात्रा में होने से सम्पूर्ण होता है। बढ़ती हुई आबादी तथा कम होते हुये खाधान्न उत्पादन को देखते हुए नई पद्धतियों का प्रयोग कर जनसमुदाय के लिए पर्याप्त मात्रा में संतुलित आहार उत्पन्न करने हेतु महत्वपूर्ण दिशा में कदम उठाने होंगे। पौध व्यापारिक स्तर पर उपयोगी शर्करा उत्पन्न करते हैं, जिसमें से सेलूलोज एवं स्टार्च सबसे अधिक मात्रा में उत्पन्न होते हैं। लेकिन इसकी उपज और गुण जैव प्रौद्योगिकी तकनीक द्वारा और बढ़ाई जा सकती है। इन शर्कराओं के निर्माण हेतु जो एन्जाइम और जीन हैं, उन्हें पृथक कर दूसरे पौधों में जीन परिवर्तन द्वारा ट्रांसजैनिक पादपों का निर्माण किया जा रहा हैं। शर्करा ट्रांसजैनिक हेतु जीन आलू, तम्बाकू, चुकन्दर, सरसों आदि में स्थानांतरित किये गए हैं, जो व्यापारिक स्तर पर भोजन, डिटर्रजेंट एवं औषधीय निर्माण हेतु प्रयुक्त हो रहे हैं। भोजन के साथ-साथ कुछ शर्करा जैसे ट्रेलोज का उपयोग सूखा प्रतिरोधी निर्मित करने में भी हुआ है, इसलिए यीस्ट और इ.कोलाई से जीन पृथक कर चावल, आलू एवं तम्बाकू में स्थानंतरित किया गया है, ताकि यह महत्वपूर्ण फसलें भी सूखे के प्रति सहनशील हो। जीन अभियांत्रिकी द्वारा नये वसा युक्त पादपों के निर्माण कार्य प्रगति पर है। हमारी दैनिक जीवन शैली में आज पादप द्वारा उत्पन्न होने वाले तेल के स्थान पर पशु प्रदत वसा का प्रचलन बढ़ रहा है। पादप प्रदत्त वसा मुख्यतय: खाने में उपयोग होती है। इसकी औद्योगिक महत्ता को जैव प्रौद्योगिकी द्वारा परिवर्तन कर बढ़ाया जा सकता है साथ ही अनवीकरणीय पेट्रोलियम आधारित उत्पाद की जगह प्रयुक्त किया जा सकता है। विभिन्न वसा की गुणवत्ता में अंतर उनके वसीय अम्लों के रासायनिक संगठन की वजह से होता है, जो उनके संतृप्त बिंदु को निर्धारित करते है। इस रासायनिक संगठन को निर्धारित करने वाले एन्जाइम व प्रोटीन को पृथक कर दूसरे पौधों में डालकर अधिक गुणवत्ता वाले वसीय अम्लों तैयार किये जा सकते है। शरीर के विकास हेतु प्रोटीन भी एक अहम् रोल रखता है। भारत में खाद्यान्न में मुख्यतय: अनाज का प्रयोग होता है जिसमें प्रोटीन की मात्र एवं आवश्यक अमीनो अम्ल कम होते है। इस दिशा में आणविक खेती द्वारा अमीनो अम्लों जो कि प्रोटीन निर्माण की आधारशिला है, परिवर्तन करके अधिक गुणवत्ता वाले प्रोटीन, एन्टीवाडी एवं वैकसीन निर्मित किये जा सकते है। प्रोटीन संश्लेषित करना और इसके क्रियात्मक लेने में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन जैसे प्रोटीन तह, शुद्धिकरण भी जरुरी है। इसके औधोगिक पैमाने पर उत्पादन हेतु जीवाणवीय एवं यीस्ट माध्यम प्रयुक्त हो रहा है। जैव प्रौद्योगिकी तकनीक प्रयुक्त कर पादप प्रदत्त वैक्सीन भी निर्मित की जाती है। इस पद्धति के उपयोग के पीछे दूरदर्शिता सस्ती एवं प्रभावी औषधि निर्माण करना है, जो बीमारियों से निजात दिलाने में कारगर सिद्ध हो सकती है। विषाणु एवं जीवाणीय माध्यम पुन: संयोजक प्रोटीन उत्पन्न करने हेतु प्रयुक्त हो रहे है। प्रारंभिक स्तर पर वैक्सीन निर्माण अखाद्य पादप जैसे तम्बाकू में किया गया इसके उपरान्त इसे खाद्य पादप जैसे टमाटर और केले में किया गया। पशुओं के लिए खाद्य वैक्सीन चारे वाली फसलों में किया गया। उदाहरण के तौर पर इन्टरफैरान, एन्टीट्रिपसीन चावल में, प्रोटीनीन मक्का में लेक्टोफेरिन, आलू में एन्कफेपेलीन केनोला में उत्पन्न किये जा रहे है। आनुवंशिक रूप से संशोधित खाद्य पदार्थ दुनिया में भूख और कुपोषण की समस्याओं के कई हल करने के लिए, उपज बढ़ाने और रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता को कम करने के साथ ही पर्यावरण की रक्षा करने की क्षमता रखती है। फिर भी इसके अभिग्रहण में कई चुनौतियों है जैसे सुरक्षा का परीक्षण, विनियमन, अंतरराष्ट्रीय नीति और खाद्य लेबलिंग आदि पर आनुवंशिक इंजीनियरिंग भविष्य की अपरिहार्य लहर है जो बहुत ही लाभदायक है। पोषण कुपोषण सामान्यतया वहाँ पाई जाती है जहां गरीब लोगों को अपने आहार के लिए मुख्य भोजन के लिए चावल जैसी एक ही फसल पर निर्भर होना पड़ता है जो कि विकसित देशों में आम है। जबकि चावल सभी आवश्यक पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा में कुपोषण को रोकने के लिए कारगर नहीं है। अगर चावल आनुवंशिक रूप से परवर्तित

कर दिया जाये तो पोषक तत्वों की कमी को दूर किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, विटामिन ए की कमी के कारण अंधापन तीसरी दुनिया के देशों में एक आम समस्या है. स्विस फेडरल इंस्टीटयूट ऑफ संयंत्र विज्ञान प्रौद्योगिकी संस्थान में शोधकर्ताओं ने 'सुनहरा' बीटा कैरोटीन (विटामिन ए) के एक असामान्य रूप से उच्च सामग्री युक्त चावल बनाया है। दवाएँ, टीकों का उत्पादन बहुत ही महंगा है साथ ही विशेष भंडारण स्थितियों की आवश्यकता होती है जो कि विकासशील देशों में आसानी से उपलब्ध नहीं है। शोधकर्ताओं ने टमाटर और आलू में खाद्य टीके विकसित करने के लिए काम कर रहे हैं। इन टीकों को बहुत आसानी से उपलब्धा कराया जा सकता है। यह अभिलेख मुख्यतया शर्करा, वसा और प्रोटीन पर केन्द्रित है जो हमारे भोजन के मुख्य संघटक हैं। वसा एवं प्रोटीन निर्माण में अभी और आधार शोध की आवश्यकता है इसके साथ कम लागत आये इस बिंदु पर भी चिंतन जरुरी है। इन्ही सभी बिन्दुओं का आधार रख कर जैव प्रौद्योगिकी का सकारात्मक प्रभाव मानव एवं पशुजीवन के साथ सम्पूर्ण जनकल्याण पर देखा जा सकेगा। जी.एम भोजन के प्रति सुरक्षा और विश्वास के प्रति प्रश्न चिन्ह होते हुए भी इस तरह की फसलों का क्षेत्र लगातार बढ़ रहा है और शोध कार्य जारी है। कृषक खलिहानो में सबसे ज्यादा कीट व खरपतवार प्रतिरोधी फसलें लगाई जा रही है। बहुत सारी बहुराष्ट्रीय कम्पनी जैसे मोनसेंटो, सिन्जेंन्टा आदि इस दिशा में अच्छा काम कर रही है। जी.एम. फसलों के मुख्य लाभ के अन्तर्गत कीट व खरपतवार रोकने के लिए खतरनाक रसायनों के प्रयोग में कमी आना है जो मानव व पशु स्वास्थ्य दोनों के लिये उत्तम है। साथ ही इस से पर्यावरण सुरक्षित हुआ है एवं भूमि के उपजाऊपन में बढ़ोतरी हुई है, साथ ही ईधन रसायनों के छिड़काव के दौरान प्रयोग में आने वाले ईधन की लागत में कमी आई है एवं इन रसायनों के साथ निकलने वाली हानिकारक गैसों के उत्सर्जन में कमी आई है जिससे पर्यावरण सुरक्षित हुआ है। जी.एम फसलों के लाभ के साथ साथ इसके उपयोग से किस तरह की असुरक्षा हो सकती है? इस बिंदु पर ध्यान केंद्रित करना बहुत जरुरी है। आनुवंशिक रूप से संशोधित खाद्य पदार्थ दुनिया में भूख और कुपोषण की समस्याओं को हल करने के लिए, उपज बढ़ाने और रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता को कम करने के साथ ही पर्यावरण की रक्षा करने की क्षमता रखती है फिर भी इसके अभिग्रहण में कई चुनौतियाँ है जैसे सुरक्षा का परीक्षण, विनियमन, अंतरराष्ट्रीय नीति और खाद्य लेबलिंग आदि पर आनुवंशिक इंजीनियरिंग भविष्य की अपरिहार्य लहर है जो बहुत ही लाभदायक है। प्रस्तुत अभिलेख मे जी.एम. फसलों के अभिग्रहण, नियंत्रण और भविष्य पर चर्चा की गई और यह पाया गया कि जी.एम फसलें मानव स्वास्थ्य उनकी जीवनशैली को और अच्छी बनाने मे महत्वपूर्ण कारगर सिद्ध हो सकती है। बहुत सारे विकसित देशों में अभी इसे अभिग्रहित करने मे शंका है। लेकिन अच्छे सुरक्षा परीक्षण, विनियमन, अंतरर्राष्ट्रीय नीति और खाद्य लेबलिंग को अपनाकर इस दिशा में प्रगति की जा सकती है।

□□□

बेबीकार्न मक्का की उन्नत खेती

सुशीला ऐचरा[1], सुमित्रा देवी बम्बोरिया[2] व शांति देवी बम्बोरिया[3]

[1,2]महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रोद्योगिक विश्वविद्यालय, उदयपुर-313001

[3]सस्य विज्ञानं संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

बेबीकोर्न, मक्का या भुट्टा का ही एक स्वरूप है। 'बेबीकोर्न' शब्द का तात्पर्य शिशु-मक्का से है। रेशमी पूँछिया निकलने प्रारंभ होते ही अनिषेचित कच्चे भुट्टों को शिशु मक्का (बेबीकॉर्न) कहते है। इसके बटन की तुड़ाई रेशमी पूछें निकलने शुरू होते ही (2-3 से.मी. सिल्क की अवस्था पर) की जाती है। भुट्टे तोड़ने के पश्चात पौष्टिक चारा पशुओं को खिलाया जाता है। बेबी कॉर्न को रसायन मुक्त, गुणकारी व स्वादिष्ट सब्जी हेतु उपयोग में लाया जाता है। इसके अलावा इसका उपयोग सूप, अचार, पकौड़े, सलाद व सजावट आदि में किया जाता है। इसकी डिब्बाबंदी करके निर्यात किया जा सकता है और विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है। होटलों में भी इसकी काफी मांग रहती है। बेबीकोर्न की उपयोगिता एवं पोषक-तत्व का एक विशेष महत्त्व है क्योंकि यह एक स्वादिष्ट, पोषक-तत्व वाली सब्जी है। जिसमें अधिक पोषक तत्व जैसे- कार्बोहाइड्रेट्, कैल्शियम, लोहा, वसा, प्रोटीन तथा फास्फोरस की मात्रा अन्य मुख्य सब्जियों जैसे- फूल गोभी, पत्ता गोभी, टमाटर, सेम, भिन्डी, गाजर, बैंगन, पालक आदि से अधिक पाई जाती है ।

इसके अन्तर्गत कॉलेस्ट्राल रहित रेशों की अधिक मात्रा पाई जाती है, जिससे यह कैलोरी युक्त सब्जी है। बेबीकोर्न की खेती सामान्य मक्का की भांति ही की जाती है। एक वर्ष में इसकी 2-3 फसलें तक ली जा सकती है। शहरी क्षेत्रों के आसपास बेबी कॉर्न की खेती दाने वाली मक्का की खेती से अधिक लाभकारी होती है। मक्का की अपेक्षा 3-4 गुणा अधिक शुद्ध लाभ भी प्राप्त होता है।

बेबी कॉर्न मक्का की खेती से लाभ

- फसल विविधीकरण,
- किसान भाइयों, ग्रामीण महिलाओं एवं नवयुवकों को रोजगार के अवसर प्रदान करना,
- अल्प अवधि में अधिकतम लाभ कमाना,
- निर्यात द्वारा विदेशी मुद्रा का अर्जन तथा व्यापार में बढ़ावा,
- पशुपालन को बढ़ावा देना,
- मानव आहार संसाधन उद्योग (फूड प्रोसेसिंग इंडस्ट्री) को बढ़ावा देना तथा
- सस्य अन्तराल (इंटक्रीपिंग) द्वारा अधिक आय अर्जित करना।

भूमि व जलवायु

यह सभी प्रकार की मिट्टी में उत्पन्न की जा सकती है। जहां पर मक्का की खेती की जा सकती है वहीं पर बेबीकॉर्न खेती भी की जा रही है। अर्थात् सर्वोत्तम भूमि दोमट-भूमि जो जीवांश-युक्त हो उसमें सुगमता से खेती की जा सकती है तथा मिट्टी का पी.एच. मान 7.0 के आस-पास का उचित होता है।

बेबीकोर्न के लिये हल्की गर्म एवं आर्द्रता वाली जलवायु उत्तम रहती है । लेकिन आजकल कुछ किस्में जो संकर हैं, वर्ष में तीन-चार बार उगायी जाती हैं तथा ग्रीष्म एवं वर्षाकाल इसके लिए उपयुक्त रहता है ।

मक्का की उन्नत किस्में

बेबीकोर्न (मक्का) के उत्पादन हेतु मक्का की उन्नत संकुल किस्में: बी.एल.-42, प्रकाश एवं एच.एम.-4।

बीज की मात्रा

बेबीकोर्न प्राप्त करने हेतु 30-40 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर बीज की आवश्यकता होती है ।

बुवाई का समय एवं विधि

बीज की बुवाई वर्ष में तीन या चार बार की जा सकती है। प्रथम बुवाई मार्च-अप्रैल, जून-जुलाई, सितम्बर-अक्टूबर तथा कम ठंड वाले क्षेत्रों में दिसम्बर-जनवरी के माह में भी की जा सकती है। दिल्ली के आसपास के क्षेत्रों में तीन मुख्य फसलें ली जा सकती हैं जिनकी अवधि 50-60 दिन की होती है। बुवाई की विधि आमतौर पर पंक्तियों में की जाती है। एक पंक्ति से दूसरी पंक्ति की दूरी 40 सेमी. तथा पौधे से पौधे की आपस की दूरी 20 सेमी. रखते हैं क्योंकि पौधे अधिक बड़े नहीं होते हैं। बुवाई देशी हल या ट्रैक्टर द्वारा करनी चाहिए। बीज की गहराई 3-4 सेमी. रखनी चाहिए तथा बोते समय नमी पर्याप्त मात्रा में हो। इस प्रकार से इस दूरी की बुवाई का लगभग 1,50,000 पौधों की संख्या प्रति हैक्टर प्राप्त होगी।

खाद एवं उर्वरक

सड़ी हुई तैयार गोबर की खाद 10-12 टन प्रति हैक्टर तथा नत्रजन 150-200 किग्रा, फास्फोरस 60 कि. ग्रा. तथा पोटाश 40 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर दें। नत्रजन को तीन भागों में बांटे। प्रथम भाग बुवाई के समय, फास्फोरस व पोटाश भी इसी समय दें। नत्रजन का दूसरा भाग 20-25 दिन बाद सिंचाई के तुरन्त बाद दें तथा तीसरा भाग बालियां निकलनी आरम्भ होने के समय देने से बेबीकोर्न की अधिक उपज मिलती है।

सिंचाई

सर्वप्रथम सिंचाई बुवाई से पहले करे क्योंकि बीज अंकुरण हेतु पर्याप्त नमी का होना नितान्त आवश्यक है। बुवाई के 15-20 दिन बाद मौसमानुसार जब पौधे 10-12 सेमी. के हो जायें तो प्रथम सिंचाई करनी चाहिए तत्पश्चात् 12-15 दिन के अन्तराल से सर्दियों की फसल में तथा 8-10 दिन के अन्तराल से ग्रीष्मकालीन फसल में पानी देते रहना चाहिए। बेबीकोर्न या गिल्ली बनते समय पर्याप्त नमी होनी आवश्यक है।

खरपतवार-नियन्त्रण

वर्षा एवं ग्रीष्मकालीन फसल में कुछ खरपतवार या जंगली घास हो जाती हैं, जिनको निकालना जरूरी होता है। अन्यथा मुख्य फसल के पौधों से खाद्य प्रतियोगिता करेंगे। इन्हें निकालने के लिये 2-3 बार खुरपी से गुड़ाई करें। साथ-साथ हल्की-हल्की मिट्टी भी पौधों पर चढ़ावे, जिससे पौधे हवा में गिर न पायें।

बीमारियां एवं कीट नियन्त्रण

बीमारी बेबीकोर्न में अधिक नहीं लगती। लेकिन पौध-गलन छोटी अवस्था में लगती है जिसके लिये बेवस्टीन, डाइथेन एम-45 का 1.5% के घोल का स्प्रे करें। इसकी पत्तियों पर धब्बे भी लगते हैं। ये भी उपरोक्त उपचार से नियन्त्रण हो जाते हैं। कीट नियन्त्रण हेतु रोगोर, मोनोक्रोटोफास का 1.5-2 मी.ली. प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़कें। कीट-एफिड्स, भिनका तथा केटरपिलर कभी-कभी लगते हैं, जिन्हें उपरोक्त उपचार से रोका जा सकता है।

बेबीकोर्न की तुड़ाई

शिशु-गिल्लियों (बेबीकोर्न) को भुट्टे के छिलके से रेशमी कोंपल निकलने के 2-3 दिन के अन्दर ही सावधानीपूर्वक हाथों से तोड़ना चाहिए, जिससे पौधे की ऊपरी व निचली पत्तियां टूटने न पायें। इस प्रकार से

शिशु गिल्लियों को हर तीसरे-चौथे दिन अवश्य तोड़ें। वर्तमान किस्मों से 4-5 गिल्लियां प्राप्त कर सकते हैं।

उपज

बेबीकोर्न मक्का की एक फसल से 20-25 क्विंटल प्रति हैक्टर औसत उपज प्राप्त कर सकते हैं ।

बेबीकोर्न की फसल प्राप्त करने के पश्चात् हरा चारा भी पौधों से प्राप्त किया जा सकता है। हरा चारा किस्म के अनुसार 250 से 400 क्विंटल प्रति हैक्टर प्राप्त होता है। इसके अलावा कई अन्य पौष्टिक पौध उत्पाद जैसे- नरमंजरी, रेशा, छिलका, तुड़ाई के बाद बचा हुआ पौधा आदि प्राप्त होता है जिन्हें पशुओं को हरा चारा के रूप में खिलाया जा सकता है। बेबीकोर्न का बाजार मूल्य 30 रुपये प्रति कि.ग्रा. तथा हरे चारे का 70 रुपये प्रति क्विंटल होता है।

आर्थिक लाभ

एक एकड़ बेबी कॉर्न को पैदा करने में लगभग ₹ 8,000-10,000 खर्च आता है । हरे चारे को मिलाकर कुल आमदनी लगभग 38,000-40,000 ₹/एकड़ होता है। अत: किसान भाइयों को बेबी कॉर्न के उत्पादन से शुद्ध आमदनी लगभग 30,000 ₹/एकड़ होता है । एक साल में 3-4 बेबी कॉर्न की फसल ली जा सकती है। इस प्रकार एक वर्ष में एक एकड़ से लगभग ₹ 90,000 शुद्ध आमदनी प्राप्त की जा सकती है। अतिरिक्त लाभ लेने के लिये बेबी कॉर्न के साथ अन्त: फसल ली जा सकती है ।

तुड़ाई उपरान्त प्रबन्धन

इसके लिए निम्न तथ्यों का ध्यान रखना चाहिए-

- तुड़ाई के बाद बेबी कॉर्न का छिलका उतार लेना चाहिए। यह कार्य छायादार और हवादार जगहों पर करना चाहिए।
- बेबी कॉर्न का भंडारण ठंडी जगहों पर करना चाहिए।
- छिलका उतरे हुए बेबी कॉर्न को ढ़ेर लगा कर नहीं रखना चाहिए, बल्कि प्लास्टिक की टोकरी, थैला या अन्य कन्टेनर में सुरक्षित रखना चाहिए।
- बेबी कॉर्न को तुरंत मंडी या संसाधन इकाई (प्रोसेसिंग प्लान्ट) में पहुँचा देना चाहिए।

विपणन (मार्केटिंग)

इसकी बिक्री बड़े शहरों (जैसे- दिल्ली, मुम्बई, कोलकता आदि) के मंडियों में की जा रही है। कुछ किसान बन्धु इसकी बिक्री सीधे ही होटल, रेस्तरां, कम्पनियों (रिलायन्स, सफल आदि) को कर रहे हैं। कुछ यूरोपियन देशों तथा यू.एस.ए. में बेबी कॉर्न के आचार एवं कैन्डी की बहुत ही ज्यादा माँग है।

प्रसंस्करण

नजदीक के बाजार में बेबी कॉर्न (छिलका उतरा हुआ) को बेचने के लिये छोटे-छोटे पोलिबैग में पैकिंग किया जा सकता है। इसे अधिक समय तक संरक्षित रखने के लिये काँच (शीशा) की पैकिंग सबसे अच्छी होती है। काँच के पैकिंग में 52% बेबी कॉर्न और 48% नमक का घोल होता है। बेबी कॉर्न को डिब्बा में बंद करके दूर के बाजार या अन्तराष्ट्रीय बाजारों में बेचा जा सकता है।

बेबी कॉर्न दोहरे लाभ की खेती है, क्योंकि इसके पौध का इस्तेमाल पशु चारे के लिए किया जा सकता है। इसकी सुनियोजित खेती से न केवल खाद्य व पोषण सुरक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है, अपितु कृषि आय वृद्धि व रोजगार सर्जन करके कृषकों का चहुँमुखी विकास किया जा सकता हैं।

□□□

किन्नू की खेती का आर्थिक आकलन

विक्रम योगी, प्रमोद कुमार, अमित कर, राम भरोसे मीना एवं अरविन्द नागर
कृषि अर्थशास्त्र संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधन संस्थान, नई दिल्ली-110012

भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में फलों पर आधारित कृषि महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। भारत में विभिन्न प्रकार के फल जैसे आम, केला, सेब, नींबू वर्गीय फल इत्यादि सफलतापूर्वक विभिन्न क्षेत्रों में उगाये जाते हैं। फल आधारित कृषि न केवल किसानों की जोखिम कम करती है बल्कि किसानों के आय भी दोगुनी करने में सक्षम/सहायक है। नींबू वर्गीय फलों में किन्नु उत्तर भारत में एक महत्त्वपूर्ण फसल है जो मुख्यत: पंजाब, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश एवं जम्मू एवं कश्मीर में उगायी जाती है। किन्नू फल को भारत में 1947 में लाया गया और इसे पाला एवं सूखा प्रभावित क्षेत्रों में लगाया गया। आज पंजाब प्रांत का दक्षिण-पश्चिम भाग कैलिफोंनिया ऑफ भारत कहलाता है, क्योंकि ये प्रदेश उच्च गुणवत्ता वाले किन्नू पूरे भारत वर्ष को उपलब्ध करवाता है। पंजाब में किन्नू मुख्यत: फाजिल्का, फिरोजपुर, मुक्तसर सहिब, होशियारपुर एवं भटिण्डा में उगाया जाता है। अबोहर का किन्नू न केवल पूरे भारतवर्ष की आपूर्ति करता है बल्कि विभिन्न देशों जैसे खाड़ी देशों, रूस, कजाकिस्तान इत्यादि देशों में निर्यात भी करता है। पंजाब में फलों का 64 प्रतिशत क्षेत्र में केवल किन्नू फल ही उगाया जाता हैं। क्योंकि यहाँ का वातावरण, उच्च गुणवत्ता, संसाधनों की उपलब्धता किन्नू फसल को उगाने के लिये प्रेरित करती है। साथ ही में किसानों को संतुष्टिपूर्ण आय भी उपल्बध करवाती है।

पंजाब प्रांत में पहले चावल-गेहूँ फसल उगाते थे जो प्रांत में विभिन्न प्रकार की असमानता उत्पन्न कर दी है जैसे उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग, जल संसाधनों का क्षरण, मिट्टी में पेस्टीसाइडों का अवशेष इत्यादि जो न केवल मिट्टी की उर्वरता को नष्ट करते हैं बल्कि मानव स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव डालते हैं। इसलिए किसानों को किन्नू उगाना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि भी है किसानों को चावल-गेहूँ के कुचक्र से निकाल सके। साथ ही किन्नू कम लागत में उच्च आय का स्रोत भी है। इसलिए इस आलेख में किन्नू फल की खेती की लागत, आय, बाजार माध्यम और इससे जुड़ी विभिन्न समस्याओं का विस्तृत आलेख प्रस्तुत किया गया है।

पंजाब में किन्नू का क्षेत्र एवं क्षेत्र विकास

नींबू वर्गीय प्रजाति का फल किन्नू मुख्यत: शुष्क एवं सिंचित क्षेत्र में उगाया जाता है। 2004-05 में किन्नू का क्षेत्र 19360 हैक्टर था जो 2014-15 में बढ़कर 48182 हैक्टर हो गया, तथा इसकी उत्पादकता 2004-05 में 290400 किलों प्रति हैक्टर थी जो बढ़कर 2014-15 में 1108618 किलो प्रति हैक्टर हो गयी है।

किन्नू का क्षेत्र पिछले दस सालों में लगभग तीन गुणा एवं उत्पादकता 5 गुणा बढ़ गयी है। किन्नू का क्षेत्र एवं उत्पादकता बढ़ोतरी में विभिन्न अनुसंधान संस्थानों जैसे पंजाब कृषि विश्व विद्यालय, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान एवं सीफेट की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसके साथ पंजाब सरकार ने विभिन्न विशेष रियायतें वाले कार्यक्रम जैसे कृषि विभेदीकरण एवं नींबू वर्गीय सोयायटी इत्यादि का गठन किया है जिन्होने इसके क्षेत्र

बढ़ोतरी में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इसके साथ ही किन्नू अन्य फसलों की तुलना में अधिक स्थायी आय वाला स्रोत है जो किसानों को किन्नू खेती करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

तालिका 1: किन्नू क्षेत्र उत्पादन एवं उत्पादकता

साल	क्षेत्र (हेक्टेयर)	उत्पादन (एम टन)	उत्पादकता (कि.ग्रा./हैक्टर)
2004-05	19360	15000	290400
2005-06	22887	15000	43305
2006-07	31788	18571	591319
2007-08	31788	18571	591319
2008-09	35619	19839	706645
2009-10	38837	22565	876358
2010-11	83573	24988	2088359
2011-12	42795	21381	915005
2012-13	45851	21562	988633
2013-14	47101	21607	1017725
2014-15	48182	23009	1108618

स्रोत: पंजाब सांख्यिकीय सार (2014.15)

किन्नू बाग की लागत

किन्नू का बाग उगाने के लिए आरम्भ में अत्यधिक पूंजी की आवश्यकता होती है जो मुख्यत: खेत को समतल बनाने, पौध लगाने के लिए गढ्ढे खोदने, गोबर खाद्य (गढ्ढे भरने के लिए) उर्वरक इत्यादि की आवश्यकता होती है। पंजाब प्रांत के फाज्लिका जिले में किन्नू पर एक अध्ययन किया, उसमें पाया गया कि मुख्यत: लागत भूमि समतल बनाने में 4168 रूपये प्रति हैक्टर आती है तथा गढ्ढे खोदने, पौध लगाने तथा बाढ़ लगाने में लागत क्रमश: 7843 रूपये प्रति हैक्टर, 9727 रूपये प्रति हैक्टर एवं 7671 रूपये प्रति हैक्टर आती है तथा कुल बाग लगाने की लागत लगभग 39000 रूपये प्रति हैक्टर आती है (कौर एवं साथी 2016)।

किन्नू फल के उत्पादन का आर्थिक आंकलन

जैसा कि हम जानते है कि किन्नू एक वहुवर्षीय फल फसल है जिसका रखरखाव के लिए लागत भी साल दर साल बदलती रहती है। किन्नू पौधे की रखरखाव लागत साल दर साल विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है, जैसे पौधे की उम्र, बीमारियों एवं कीड़ो की तीव्रता (पौधे को नुकसान पहुँचाने की), सिंचाई के लिये पानी

तालिका: 2 किन्नू का बाग लगाने की लागत (₹/हैक्टर)

क्र.सं.	विशेष	लागत
1.	भूमि तैयारी	4168
2.	खुदाई और गड्ढे के भरने	7843
3.	खाद और उर्वरकों	2299
4.	पौधा और रोपण लागत	9727
5.	सिंचाई	278
6.	परिवहन लागत	2112
7.	बाड़ लगाना	7671
8.	कार्यशील पूंजी पर ब्याज	3204
9.	कुल लागत	38802

स्रोत: कौर एवं साथी 2016

की आवश्यकता, इत्यादि। विभिन्न अध्ययनों में पाया गया है कि साल दर साल किन्नू के रखरखाव की लागत बढ़ती जाती है। अधिकांश काम किन्नू बाग में अनुबंधित मजदूर के द्वारा किये जाते हैं जैसे कि बाग की देखभाल, फलों की तुड़ाई एवं ढुलाई, इत्यादि काम अनुबंधित मजदूरों द्वारा की किये जाते है। अनुमानत: एक एकड़ बाग के लिये रखरखाव लागत 20 हज़ार से लेकर 40 हज़ार तक आती है वो भी किन्नू बाग की उम्र पर निर्भर करती है। पौधा स्थायी उत्पादन देने लगता है तो रखरखाव लागत 40 हज़ार/एकर के करीब रहती हैं किन्नू फल का उत्पादन लगभग पांचवे साल में शुरू होता है। जो लगभग 20-25 साल तक चलता है।

किन्नू का उत्पादन लगभग 100-150 क्विंटल प्रति एकड़ रहता है। मुख्यत: किन्नू का उत्पादन सही रखरखाव

तालिका 3: किन्नू की रख रखाव लागत एवं शुद्ध लाभ रूपये प्रति एकड़

विशेष	1 साल	2 साल	3 साल	4 साल	5-7 साल	8 साल एवं ऊपर
चर लागत	70025.9	4212.23	5898.98	8165.4	19895.30	22584.5
निश्चित लागत	20015.23	14859.5	14859.5	14875	14975.44	14947.44
कुल लागत	27041.13	19071.6	20758.45	23040.9	34842.74	37531.94
सकल वापसी	0	0	0	28836	82985	102280
शुद्ध लाभ	27041.13	19071.6	20758.45	5795.1	48142.26	64748.06

स्रोत: कौर एवं साथी 2016

तालिका 4: किन्नू की आर्थिक व्यवहार्यता

लागत-लाभ अनुपात	2.04
शुद्ध वर्तमान मूल्य (₹)	302289.78
वापसी की आंतरिक दर	40.00

स्रोत: कौर एवं साथी 2016

पर निर्भर करता है। आठ साल के बाद किन्नू बाग से शुद्ध लाभ लगभग 50 हज़ार से 80 हज़ार रूपये के मध्य रहता है। वो भी इस बात पर निर्भर करता है कि किसान विपणन का कौनसा माध्यम चुनता है। किन्नू की आर्थिक व्यवहार्यता लागत-लाभ अनुपात, शुद्ध वर्तमान मूल्य एवं वापसी की आंतरिक दर से पता चलता है जो क्रमश: 2.4, 302289 रूपये एवं 40 प्रतिशत पाया गया। जो ये दर्शाता है कि किन्नू की फसल में निवेश एक लाभदायक सौदा है।

किन्नू के विपणन के माध्यम (किन्नू का व्यापार)

कृषि उत्पादों का क्रय-विक्रय बाजार में होता हैं जहाँ साल भर मेहनत करके किसान अपना उत्पाद बाजार में बेचता है। किन्नू किसान मुख्यत: 4 विपणन माध्यम से करता है। वो है-

विपणन माध्यम प्रथम: उत्पादक - तुड़ाई पूर्व ठेकेदार - कमीशन अभिकर्त्ता - थोक विक्रेता - फुटकर विक्रेता - उपभोक्ता

विपणन माध्यम द्वितीय: उत्पादक - कमीशन अभिकर्त्ता - थोक विक्रेता - फुटकर विक्रेता - उपभोक्ता

विपणन माध्यम तृतीय: उत्पादक - संग्राहक - थोक विक्रेता - फुटकर विक्रेता - उपभोक्ता

विपणन माध्यम चर्तुथ: उत्पादक - प्रोसेसर - उपभोक्ता

किसानों के विपणन माध्यम को मुख्यत: दो प्रकार में विभक्त किया है। वो है:

(1) परम्परागत माध्यम (2) उभरती विपणन प्रणाली

विभिन्न अनुसंधानों से ये पाया गया है जो किसान उभरती विपणन प्रणाली का प्रयोग करते है वो ज्यादा मुल्य (1296 रूपये प्रति क्विंटल) एवं कम लागत विपणन (265 रूपये प्रति क्विंटल) में विपणन करते है जिससे उनका शुद्ध लाभ 1031 रूपये प्रति क्विंटल रहता है जबकि जो किसान परम्परागत माध्यम का प्रयोग करते हैं उनको 860 रूपये प्रति क्विंटल मिलता है तथा उनका शुद्ध लाभ 636 रूपये है जो कि लगभग 40 प्रतिशत उभरते विपणन माध्यम से कम है।

विपणन के नवाचार: उभरती विपणन प्रणाली

1. किसान का बाजार: ये मध्यम किसानों को उनकी लागत का अधिकांश भाग प्रदान करता है इससे किसान अपने उत्पाद को सीधा उपभोक्ताओं में बेच सकता है। जिससे बिचोलियों द्वारा किसान का शोषण नहीं होता है और किसान अपने उत्पाद का अधिकतम मूल्य प्राप्त करता है।

2. अनुबंध खेती: अनुबंध खेती छोटे एवं मध्यम किसानों को उच्च लागत वाली फसल उगाने में उपयुक्त है इसके

द्वारा किसान पहले ही अनुबंध कर लेता है। जिससे किसान उच्च गुणवत्ता युक्त सलाह एवं उच्च संसाधन मिलते है तथा मूल्य विचलन इत्यादि का किसानों पर प्रभाव नही पड़ता है। इसको बढ़ावा देने के लिए पंजाब सरकार ने पी.ए.एफ.सी. की स्थापना की। जो अनुबंध खेती को प्रचारित करती है।

3. सफल मॉडल: इस के अन्तर्गत किसान अपने ऊपज सफल (Mother Dairy) को सीधा बेच सकता है जिसमें किसानों का बीचोलियों द्वारा शोषण नही होता है तथा किसान अधिक पैसा प्राप्त करता है।

किन्नू किसानों की समस्याएँ

1. **मूल्य विचलन:** किन्नू किसान को हर साल मूल्य विचलन का सामना करना पड़ता है। जिससे उनको उनकी फसल की अच्छी लागत नही मिल पाती है।
2. **फसल उपरान्त बुनियादी ढाँचे की कमी:** 40 प्रतिशत किसान अपने उत्पाद को तुड़ाई के बाद संरक्षण नही कर पाते हैं। जिसके कारण पीक सीजन में वो अपने उत्पाद का अच्छा मूल्य नहीं ले पाते हैं। अत: भण्डारण क्षमता बहुत ही कमजोर है।
3. **अपर्याप्त प्रसंस्करण सुविधा:** कमजोर प्रसंस्करण के बुनियादी ढाँचे के कारण, किसान वेल्यु एडीशन क्रियाकल्प किन्नू फसल में सीमित है।
4. **अप्रर्याप्त विपणन सुविधाएं:** किसान को अधिकांश अपना विपणन बिचोलियों को करना पड़ता है जिससे वो अपने उत्पाद का सही मूल्य नहीं ले पाते हैं और बिचोलियों द्वारा किसानों का शोषण होता है।

सूझाव

1. सरकार को बुनियादी ढाँचे पर जोर देना चाहिए जैसे प्रसंस्करण सुविधा इत्यादि।
2. सरकार द्वारा बेहतर विपणन सुविधाओं के साथ विनियमित बाजारों की स्थापना करनी चाहिए।
3. हमारे यहाँ पर किन्नू की कीमत में अधिक उतार-चढ़ाव होता है। किन्नू की बंपर फसल होने पर अत्यधिक उतार-चढ़ाव होता है। अत: उपयुक्त फसल मूल्य निर्धारित करना चाहिए।
4. विपणन के बुनियादी ढाँचे का विकास करना चाहिए तथा निर्यात के लिए भी प्रयुक्त उपाय करने चाहिए।
5. किसानों में किन्नू फसल के लिए बीमा योजना के प्रति किसानो को जागरूक करना चाहिए।
6. किसान के खेत लेबल पर छटाई, प्रोसेसिंग और पैकेजिंग को बढ़ावा देना चाहिए।
7. किसानों के मध्य किन्नू के विपणन के लिए संस्था बनानी चाहिए जो उनकों विपणन के सही माध्यम एवं बाजार भाव के बारे में बता सके। अबोहर में सुरेन्द्र जाखड़ ईकों ट्रस्ट इस क्षेत्र में काम कर रही है लेकिन उसको और सुदृढ बनाना चाहिए।

□□□

लेखकों से...

1. अपनी तकनीकी या अनुसंधान की जानकारी स्वच्छ एवं पठनीय साधारण हिन्दी में हाथ से लिखकर या टाइप करवाकर भेजें।
2. रचना पृष्ठ के एक ओर उचित हाशिया और पंक्तियों के बीच स्थान छोड़कर सम्पादक, प्रसार दूत के पास यथा समय भेजें।
3. वर्ष 2015 से प्रसार दूत का अंक त्रैमासिक किया गया है। लेखकों से अनुरोध है कि प्रथम अंक के लिए प्रकाशनार्थ सामग्री 30 जनवरी, द्वितीय अंक अप्रैल, तृतीय अंक 31 जुलाई तथा चतुर्थ अंक 31 अक्तूबर तक अवश्य भेज दें।
4. तकनीकी पर दी गई जानकारी की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी। रचना को प्रकाशित करने या न करने का पूरा अधिकार सम्पादक मंडल को होगा।

प्रसार दूत का प्रकाशन समय

प्रथम अंक मार्च, द्वितीय अंक जून, तृतीय अंक सितम्बर और चतुर्थ अंक दिसम्बर में प्रकाशित होगा।

वार्षिक शुल्क रु. 80/- मनिआर्डर द्वारा भेजें।

शुल्क और सामग्री भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता

प्रभारी अधिकारी
कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली - 110012
फोनः 011-25841670, 25846233, 25841039
पूसा एग्रीकॉम : 1800 11 8989 (निःशुल्क)

पाठकों से...

प्रसार दूत में प्रकाशित किसी भी तकनीकी के विषय में अंश और समाधान हेतु आपके पत्रों का स्वागत है। विषयों पर अधिक जानकारी के लिए लेखक से सीधे भी सम्पर्क कर सकते हैं।

किसानों से...

यदि आपकी खेती व पशु-पालन संबंधी कोई विशेष समस्या है, तो लिखकर भेजें। हम प्रसार दूत के माध्यम से उसका समाधान आप तक पहुंचाएंगे।

अन्त में...

आपकी खुशहाली ही हमारी सफलता है।

I.A.R.I. LIBRARY

निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012 द्वारा प्रकाशित तथा
मैसर्स वीनस प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स बी-62/8, नारायणा इन्डस्ट्रियल एरिया, फेस-2, नई दिल्ली-110028 द्वारा मुद्रित
फोनः 45576780 मोबाईलः 9810089097